जनवरी–जून, 2019

अंक-01

वन अनुसंधान ई-पत्रिका

वन अनुसंधान संस्थान
डाकघर– न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 248006 (उत्तराखंड), भारत

संरक्षक
अरुण सिंह रावत
निदेशक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

उप–संरक्षक
नीलिमा शाह
कुलसचिव
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संपादक मंडल

मुख्य संपादक
डॉ. मौ. यूसुफ
वैज्ञानिक–जी
प्रमुख, वन संरक्षण प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान

संपादक एवं समन्वयक
श्री रामबीर सिंह
वैज्ञानिक–डी
विस्तार प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान

सहायक संपादक
श्री शंकर शर्मा
सहायक निदेशक (रा.भा.)
हिंदी अनुभाग
वन अनुसंधान संस्थान

रचना एवं अभिन्यास
अमोल राऊत
तकनीकीय आर्टीस्ट
वर्गीकरण वनस्पति शाखा
वन अनुसंधान संस्थान

प्रकाशन
हिंदी अनुभाग
वन अनुसंधान संस्थान
डाकघर– न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 248006 (उत्तराखंड), भारत

(पत्रिका में व्यक्त तथ्य, आँकड़े और विचार रचनाकारों के अपने हैं, सम्पादक मंडल का इनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।)

निदेशक की कलम से ....

अरुण सिंह रावत
निदेशक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संस्थान की छमाही 'वन अनुसंधान ई–पत्रिका' के माध्यम से आपको संबोधित करते हुए मुझे अति प्रसन्नता हो रही है कि हिंदी अनुभाग, वन अनुसंधान संस्थान देहरादून इस वर्ष अपनी पहली ई–पत्रिका 'वन अनुसंधान ई–पत्रिका' का प्रकाशन करने जा रहा है।

हिंदी को भारतीय संविधान में राजभाषा का स्थान दिया गया है। गृह मंत्रालय राजभाषा विभाग द्वारा समय–समय पर दिशा–निर्देश जारी किए जाते हैं जिनका अनुपालन करना राजभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार एवं उत्तरोत्तर विकास के लिए अनिवार्य है।

भारतीय भाषाओं एवं भारतीय संस्कृति के विभिन्न सम्प्रदायों, जातियों, परंपराओं एवं सभ्यताओं को एक सूत्र में पिरोने के लिए राजभाषा हिंदी को एक सशक्त भाषाई संपर्क सूत्र के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता है। संस्थान द्वारा भी राजभाषा नीति के कार्यान्वयन और हिंदी के प्रयोग को निरंतर प्रोत्साहित करने का भरसक प्रयास किया जा रहा है। इसी क्रम में संस्थान द्वारा हिन्दी भाषा के माध्यम से वैज्ञानिक शोधों को बढ़ावा देने हेतु वानिकी के क्षेत्र में किये गये वैज्ञानिक शोधों का सार छमाही वन अनुसन्धान ई–पत्रिका के माध्यम से प्रकाशन किया जाएगा।

मैं पत्रिका के प्रथम अंक के लेखकों, रचनाकारों एवं संपादक मंडल के डॉ. मौ. यूसुफ, श्री रामबीर सिंह, श्री शंकर शर्मा, श्री अमोल राऊत आदि के कुशल संपादन के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ तथा मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका पाठकों पर अपनी पठनीयता, उत्कृष्ट जानकारियों एवं आकर्षक प्रस्तुति से यथेष्ट प्रभाव डालने में सफल होगी।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित।

अरुण सिंह रावत
निदेशक

मुख्य संपादक की कलम से ....

डॉ. मौ. यूसुफ, वैज्ञानिक–जी
प्रमुख, वन संरक्षण प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

वन अनुसंधान ई–पत्रिका के प्रथम अंक के प्रकाशन पर, मुझे वानिकी के क्षेत्र में किये गये शोधों और जानकारियों को जन–साधारण तक हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए अति हर्ष एवं गौरव की अनुभूति हो रही है। इस पत्रिका के प्रकाशन का उद्देश्य मुख्य रूप से वन अनुसंधान संस्थान एवं भा.वा.अ.शि.प. के अर्न्तगत आने वाले अन्य संस्थानों/केन्द्रों में हो रहे शोध कार्यों को जन सामान्य तक पहुँचाना है। इस पत्रिका का उद्देश्य वानिकी से संबधित विभिन्न शोधों, लेखों–रचनाओं आदि को समाविष्ट कर, हिन्दी माध्यम में प्रस्तुत करना है।

'वन अनुसंधान ई'–पत्रिका में वन अनुसंधान संस्थान एवं भारतीय वानिकी अनुसंधान शिक्षा परिषद् के अन्य संस्थानों एवं चार केन्द्रों के वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों, वन रक्षकों, वन कार्मियों एवं वनों में रूचि तथा जानकारी रखने वाले सभी व्यक्तियों को अपने विचार व्यक्त करने का व्यापक माध्यम प्राप्त होगा। अतः यह पत्रिका भविष्य में वन अनुसंधान संस्थान तथा भा.वा.अ.शि.प.के के शोध कर्मियों के लेखों/रचनाओं को प्रोत्साहित करने का एक उपयोगी मंच बन कर, हिन्दी जगत में अपनी भूमिका का निर्वाह करेगी साथ ही पत्रिका ऑनलाइन होने की वजह आज के इलेक्ट्रोनिक युग में इसका प्रसार व्यापक एवं अधिक प्रभावी होगा।

मैं इस पत्रिका के सभी रचनाकारों/लेखकों को उनके प्रयासों के लिए बधाई देता हूँ तथा आशान्वित हूँ कि अधिक से अधिक लोग इस मंच को अपनाकर वानिकी अनुसंधान को जन–जन तक पहुँचाने में सहयोगी बनेंगे। मैं इस पत्रिका को प्रस्तुत करने में सहयोगी सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों व कर्मचारियों को इस अंक को सुरुचिपूर्ण बनाने एवं उच्च स्तरीय प्रस्तुति प्रदान करने के लिए बधाई देता हूँ

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ।

डॉ0 मौ. यूसुफ़

वन अनुसंधान ई–पत्रिका
जनवरी–जून, 2019

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	निदेशक की कलम से		
	मुख्य संपादक की कलम से		
1	कृषि वानिकी किसानों की आय बढ़ानें के लिये एक स्थायी विकल्प	शशांक शुक्ला एवं आरती चौधरी	1-3
2	जलवायु परिवर्तन का वानिकी एवं कृषि पर प्रभाव	वेदपाल सिंह	4-5
3	खम्हेर–एक बहुद्देशीय कृषि वानिकी वृक्ष	ननिता बेरी, सौरभ दुबे एवं निकिता राय	6-8
4	औषधीय पौधों पर आधारित कृषिवानिकी	डॉ. ए.के. पाण्डेय एवं अजय गुलाटी	9-13
5	सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यांकन में कृषि वानिकी का महत्व	रामबीर सिंह एवं हिमशिखा	14-17
6	हमारे लघु प्रयास–पर्यावरण के आसपास	शिव सत्य प्रसाद एवं पंकज सिंह	18-19
7	तितलियों का महत्व, पर्यावरण में उनकी भूमिका एवम् तितलियों का पर्यावरणीय समावेशीय पर्यटन की अवधारणा	डॉ. अरूण प्रताप सिंह	20
8	शहरी जंगलों से जुड़ी समस्याएँ, कारण व उपाय	कविता भंबानी शर्मा एवं डॉ0 अमित पाण्डेय	21-23
9	कृषि वानिकी : कृषक का न्यूनतम निवेश एवं अधिकतम लाभ का स्रोत	आलोक यादव, अनीता तोमर, अनुभा श्रीवास्तव एवं राजकुमार	24-25
10	दीमकों के जैविक नियंत्रण में परभक्षियों की भूमिका	डॉ. सुधीर सिंह एवं मनीष कनेरिया	26-28
11	शीशम कुम्हलन का जैव नियन्त्रण	सब्यसाची बैनर्जी, शैलेश पाण्डेय, अमित पाण्डेय, एवं मनीष सिंह भंडारी	29-30
12	पक्षियों पर ऋतु परिवर्तन का प्रभाव	योगेश पारधी, हीरा लाल असाटी, एवं प्रमोद सिंह राजपूत	31-33
13	पोपलर के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन	अरविन्द कुमार, के. पी. सिंह एवं रवि प्रकाश मौर्य	34-39
14	कोकसीनेल्लिड बीटिलस् का नाशि कीटों के जैविक नियंत्रण में योगदान	अखिलेश कुमार मिश्रा एवं डॉ. मौ. यूसुफ़	40-45
15	भारत में कृषि वानिकी की भूमिका	वेदपाल सिंह	46-47

कृषि वानिकी किसानों की आय बढ़ाने के लिये एक स्थायी विकल्प

शशांक शुक्ला, कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता एवं आरती चौधरी, भा.व.से.
वन संवर्धन एवं प्रबन्धन प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

कृषि वानिकी भूमि के लिए एक टिकाऊ प्रबन्धन प्रणाली है जो समग्र उत्पादन को बढ़ाती हैं। फसलों, पेड़, वन पौधों और जानवरों को एक साथ या अनुक्रमिक रुप से जोड़ती हैं तथा स्थानीय आबादी के सांस्कृतिक प्रणाली के साथ संगत प्रबन्धन प्रथाओं को लागू करती हैं। भारत में कृषि वानिकी की शुरूआत सन् 1890 से मानी जाती हैं जब दक्षिण अफ्रीका से कृषि वानिकी के क्षेत्र में विस्तार हुआ और इसने अपने पैर पसारते हुए सन् 1887 में बर्मा व 1890 में चित्तागोंग और 1896 में बंगाल में कदम रखा। तब से ही कृषि वानिकी भारत में अस्तित्व में आई। कृषि वानिकी भूमि को इस्तेमाल करने का वह संयुक्त नाम हैं, जिसमें फसलों की खेती के साथ–साथ बहुवर्षीय वृक्ष प्रजातियाँ लगायी जाती हैं। कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए यह एक अभिनव पहल हैं जो जलवायु परिवर्तन शमन में अहम भूमिका निभाती हैं। कृषि वानिकी प्रणाली पेड़ों का उपयोग करती हैं जिससे कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के साथ–साथ किसानों की आय के स्रोतों में विविधता और पर्यावरणीय लाभ अर्जित किया जा सकता हैं। अपनी आजीविका के अवसर बढ़ाने के लिए किसान पेड़ों से फल, तेल, चारा, ईंधन और औषधीय उत्पादों की पैदावार की बिक्री कर सकता हैं। कृषि वानिकी से एक फसल पर निर्भरता में कमी आती हैं और किसी भी मौसम में चाहे गर्मी हो या सर्दी कृषि उत्पादन को बनाए रखने में मदद करती हैं। ऐसे क्षेत्रों में जहां वनोन्मूलन की स्थिति बने वहाँ किसानों को कृषि वानिकी को अपनाना चाहिए क्योंकि इसके आर्थिक लाभ ही नहीं बल्कि दीर्घकालिक लाभ भी हैं। कृषि और पर्यावरण सेवाओं के साथ खाद्य, चारा, जलाऊ लकड़ी, फाईबर और लकड़ी की आवश्यकता को पूरा करने के लिए प्राचीन समय से कृषि वानिकी प्रणाली को एक महत्वपूर्ण एकीकृत कृषि अभ्यास के रूप में पहचाना जाता हैं। फसलों के साथ–साथ पौधें लगाने से कृषि वानिकी किसानों की आय में वृद्धि के लिए मौलिक भूमिका निभाती हैं।

निःसंदेह, कृषि वानिकी किसान की आय बढ़ाने के लिए एक स्थायी विकल्प हैं। कृषि वानिकी को सरकार द्वारा भी प्रोत्साहित किया जा रहा है, क्योंकि मृदा के स्वास्थ्य, पोषक साइकलिंग, कार्बन अनुक्रम में सुधार और प्राकृतिक संसाधनों के कम उपयोग के साथ–साथ मौजूदा फसल प्रणाली में यह बेहतर आर्थिक वापसी का एक उदाहरण हैं। सामान्य रूप से भारत और विशेष रूप से सीमित भूमि संसाधनों पर खाद्यान्नों की अधिक मांग के चलते, वुडी प्रेरिनियल धीरे–धीरे कम हो गए थे। कृषि पर राष्ट्रीय आयोग, 1976 ने सामाजिक वानिकी के कार्यान्वयन के लिए सुझाव दिया है। कृषि वानिकी को बढ़ावा देने के लिए, राष्ट्रीय कृषि नीति 2000, ग्रीनिंग इंडिया 2001 पर योजना आयोग (अब नीति आयोग) कार्य बल, राष्ट्रीय बांस मिशन 2002, किसानों के लिए राष्ट्रीय नीति, ग्रीन इंडिया मिशन 2010 के बाद, आखिरकार 2014 में भारत सरकार द्वारा एक समर्पित राष्ट्रीय कृषि सूचना नीति को मंजूरी दे दी गई थी। इस नीति ने संगठित तरीके से कृषि वानिकी क्षेत्र के विकास को संबोधित करने के लिए मिशन या बोर्ड की स्थापना के लिए सिफारिश की हैं जो अब वर्तमान में कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के तहत ''सब मिशन एग्रोफोरेस्ट्री'' (SMAF) के रूप में कृषि वानिकी के क्षेत्र में कार्य कर रहा हैं।

भारत के कई क्षेत्रों में किसानों को क्षेत्रीय फसलों की तुलना में कृषि वानिकी अधिक लाभदायक विकल्प लगता हैं। हालांकि, किसानों को सापेक्ष उच्च लाभप्रदता और सरकार द्वारा किए गए कई समेकित प्रयासों के बावजूद, कृषि वानिकी को अपनाने की उम्मीद अभी तक अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुंच पाई हैं। सामान्य तौर पर, दो कारण किसी विशिष्ट क्षेत्र में कृषि वानिकी को अपनाने का निर्धारण करते हैं, जैसे–अन्य फसलों और लकड़ी की कीमत अस्थिरता के साथ सापेक्ष प्राप्त लाभांश। कृषि वानिकी में मुख्य रूप से लगाये जाने वाली दो वृक्ष प्रजातियाँ पॉपलर और यूकेलिप्टस लकड़ी की कीमतों में अस्थिरता ने इस क्षेत्र में कृषि वानिकी किसानों की आमदनी पर नकारात्मक प्रभाव डाला हैं। बाजार की विफलता की स्थिति में सरकारी हस्तक्षेप की तत्काल आवश्यकता हैं। पॉपलर और यूकेलिप्टस लकड़ी की कीमतों में स्थिरिता किसानों की आय में वृद्धि के लिए एक महत्वपूर्ण शर्त हैं। कृषि वानिकी

और अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों जैसे लकड़ी, व्यापार नीति, क्रेडिट नीति, सब्सिडी नीति, ऊर्जा नीति और वन नीति के लिए मूल्य नीति के बीच नीतिगत बातचीत की तत्काल आवश्यकता है, जो कृषि वानिकी के विकास को काफी हद तक प्रभावित करेगा। किसान बाजारों से प्राप्त संकेतों के आधार पर विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में अपने संसाधन आवंटित करते हैं। फसलों के तहत क्षेत्र का आवंटन विभिन्न फसलों की अनुमानित सापेक्ष लाभप्रदता से प्रभावित होता हैं।

कृषि वानिकी प्रणाली के अन्तर्गत चावल और गेहूं की फसलों के उपज स्तर ने स्थिरता और शुद्ध लाभ का अनुभव किया और इस क्षेत्र में कृषि–पारिस्थितिक तंत्र में कई जटिलताओं का निर्माण किया। इस तरह के परिदृश्य में, इस क्षेत्र के किसानों को अपनी आय बढ़ाने के लिए उपयुक्त और टिकाऊ भूमि उपयोग प्रणाली के माध्यम से परिचलन को गति देने की आवश्यकता है। तेजी से बढ़ती विदेशी वृक्ष प्रजातियां जैसे पॉपलर और यूकेलिप्टस को किसानों के क्षेत्र में एक छोटी अवधि में दी गई भूमि से अधिकतम आय प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत किया गया हैं। ये वृक्ष प्रजातियां इस क्षेत्र में फसल विविधीकरण के लिए आर्थिक रूप से व्यवहार्य विकल्प साबित हुईं है। विभिन्न अध्ययनों के माध्यम से चावल–गेहूं प्रणाली के साथ पॉपलर आधारित कृषि वानिकी सिस्टम की तुलनात्मक आर्थिक व्यवहार्यता से पता चला है कि कृषि वानिकी प्रणाली किसानों की आय को सात साल में दोगुनी से अधिक करने में सक्षम है और अगर किसान को कृषि वानिकी प्रणाली द्वारा अनुक्रमित कार्बन का मूल्य मिलता है तो यह बढ़कर तीन गुना अधिक हो जाता हैं।

वर्ष 2012–13 के बाद पॉपलर और यूकेलिप्टस की घटती कीमते और लगातार कीमतो में आ रही अस्थिरता की प्रवृत्ति के कारण कृषि वानिकी किसानों की आय को दोगुना करने में असफल सी होती प्रतीत हो रही हैं। वर्तमान परिदृश्य की बात करें तो पॉपलर और यूकेलिप्टस की कीमत में अस्थिरता ने किसानों की आय पर गहरा प्रभाव डाला हैं जिसके कारण आज किसान अपनी कृषि भूमि पर नए वृक्षारोपण में निवेश करने से डर रहा हैं। इस प्रकार की घटनाओं ने किसानो को कृषि वानिकी के प्रति हतोत्साहित किया हैं। यदि पॉपलर और यूकेलिप्टस की कीमतों का आँकलन करें तो औसतन 500–800 रूपये प्रति कुन्टल तक की गिरावट दर्ज की गयी हैं। कीमतो का हाल पहले ऐसा नहीं था वर्ष 2005–06 से 2012–13 तक मूल्य स्थिर रहा/बढ़ा परन्तु उसके बाद तेजी से गिरावट आई है। यह गिरावट का असर हैं कि कीमतो में एक तिहाई की कमी हुयी हैं। पॉपलर और यूकेलिप्टस में कीमत अस्थिरता ने किसानों की आय पर असर डाला है और नए वृक्षारोपण में निवेश को हतोत्साहित किया।

भारत सरकार ने कृषि आय बढ़ाने, उत्पादन को स्थिर करने और इसके परिणामस्वरूप, कम उत्पादकता में सुधार करने के लिए कई उपाय करने की योजना बनाई है। जिसमें से हाल ही में माननीय प्रधानमंत्री जी ने अम्बेडकर जयन्ती के दिन वन धन योजना का शुभारम्भ झॉरखण्ड से किया। जिसमें वन धन केन्द्रों की स्थापना, वन क्षेत्र के आस–पास निवास करने वाले किसानों की आय को दोगुना करने के लिये मील का पत्थर साबित होगी। उसके साथ "मेड पर पेड़" लगाने के नारे के साथ कृषि वानिकी को अपनाने हेतु बल दिया गया हैं।

किसानों को कृषि फसलों, बागवानी, डेयरी, मत्स्यपालन, कुक्कुट इत्यादि के सहक्रियात्मक मिश्रण से जुड़े एकीकृत कृषि प्रणाली दृष्टिकोण में नियमित आय प्रदान करने और छोटे भूमि धारक को वैकल्पिक रोजगार पर, संसाधन उपयोग के माध्यम से खेती की लागत में कमी और बहुत आवश्यक लचीलापन प्रदान करने का व्यवहार्य विकल्प लगता हैं। अनुमानित जलवायु परिवर्तन परिदृश्य के लिए उच्च पैदावार वाली किस्मों और हाइब्रिड बीजों को एक सफल फसल उत्पादन के लिए बहुत जरूरी है और फसल के आधार पर उपज में 15 से 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और इसे अन्य इनपुट के कुशल प्रबंधन के साथ 45 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता हैं। पोषक तत्वों के साथ सूक्ष्म सिंचाई अत्यधिक कुशल हो सकती है और छोटे भूमि वाले किसानों को सशक्त बनाने के लिए प्राथमिकता दी जानी चाहिए। सरकार आक्रामक रूप से एक नई फसल बीमा (PMFBY) को बढ़ावा दे रही है जिससे कि लगातार जलवायु संबंधी गड़बड़ी के चलते किसानों द्वारा बढ़ती चुनौतियों का सामना किया जा सके। हाल ही में नाबार्ड द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट में उल्लेख किया गया हैं कि देश में किसानों की आमदनी सालाना 12 फीसद की रफ्तार से बढ़ रही है, जबकि 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने के लिये 10.4 फीसद दर से बढ़ौतरी की आवश्यकता हैं।

कृषि वानिकी और अन्य क्षेत्रों पर इन नीतियों के प्रभावों का समाधान करने के लिए इस क्षेत्र में और अधिक अनुसंधान

की आवश्यकता है ताकि यह मूल्यांकन किया जा सके कि ये नीति उपाय नकारात्मक अंतर–क्षेत्रीय प्रभाव को कैसे कम कर सकते हैं और सकारात्मक अंतर–क्षेत्रीय प्रभावों को कैसे बढ़ा सकते हैं। इसके साथ–साथ राज्यों को वृक्ष उत्पादों और बाजार व्यय के आकार और ग्रेड को मानकीकृत करने की आवश्यकता है तथा एक बहेतर बाजार तंत्र विकसित करने के लिए नीति निर्णय लेना चाहिए ताकि प्रतिस्पर्धी बाजार विकसित हो सकें, जिससे उत्पादक, अपने उत्पाद के लिए बेहतर मूल्य प्राप्त कर पायें। कृषि वानिकी के लिए बाजार सूचना प्रणाली को विभिन्न हितधारकों के लाभ के लिए निरंतर आधार पर विकसित और नियमित किया जाना चाहिए तथा किसानों और लकड़ी के बड़े उपभोक्ताओं को एग्रोफोरेस्ट्री क्षेत्र से पेड़ के उत्पादन के लिए लाभकारी मूल्य तय करने के लिए ठोस प्रयास करने की आवश्यकता है।

शशांक शुक्ला,
कनि"ठ अनुसंधान अध्येता

जलवायु परिवर्तन का वानिकी एवं कृषि पर प्रभाव

वेदपाल सिंह, वैज्ञानिक–सी, – वन संवर्धन एवं प्रबन्धन प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

कृषि एवं वानिकी भारत में भूमि उपयोग के दो मुख्य घटक हैं और भूमि उपयोग का क्रमशः 67 प्रतिशत व 22 प्रतिशत क्षेत्र कवर करते हैं, इनसे हमें खाद्य, रेशे, ईधंन, ईमारती लकड़ी, उद्योगों के लिये कच्चा पदार्थ मिलता है एवं इन दोनों क्षेत्रों से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार मिलता है एवं आय का मुख्य स्रोत हैं। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव धीरे–धीरे पड़ता है और इसका दुष्परिणाम भयंकर बाढ़, अतिवृष्टि, बेमौसम अत्याधिक वर्षा, सुनामी, सूखा व अत्याधिक गर्मी या भयंकर सर्दी के रूप में देखने को मिलता है। पिछले कुछ दशकों में ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव देखने को मिला हैं, भू–वातावरण में ग्रीन हाऊस गैसों की मात्रा में वृद्धि हुयी है। एक अनुमान के अनुसार कार्बनडाई ऑक्साईड (Co_2) की मात्रा में 42 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है और इसी प्रकार मीथेन व नाइट्रस ऑक्साइड गैसें जो कि वानिकी एवं कृषि को प्रभावित करती हैं, उनकी मात्रा क्रमशः 147 प्रतिशत व 18 प्रतिशत तक बढ़ गई है।

औसत तापमान में 0.8 से 1 डिग्री सेलसियस वृद्धि पिछले 3–4 दशकों में देखने को मिली है जो कि हमारी कृषि फसलों की वृद्धि समय को लगभग 10 प्रतिशत तक बढ़ा सकता है। पिछले कुछ वर्षो में कुल होने वाली वर्षा में बहुत विभिन्नता देखने में आयी है। वर्षा का समय घट गया है और वर्षा ऋतु की अवधि छोटी हो गयी है। और किसी वर्ष बरसात बहुत ज्यादा होती है तथा कभी कभी कई वर्षों तक सूखा देखने को मिलता है और कभी कभी वर्षा काल बहुत ही कम रहता है तथा कम समय में अत्याधिक वर्षा हो जाती है। जिससे बाढ़ आने की सम्भावनायें बढ़ जाती हैं। वर्षा के वितरण में भी बहुत विभिन्नताएं देखने में आयी है। कुछ क्षेत्रों में वर्षा बहुत ज्यादा गिरती है जबकि उसके आस–पास वाले क्षेत्रों में बहुत कम या नहीं के बराबर होती रही है।

तापमान वृद्धि का सबसे ज्यादा प्रभाव हमारें ग्लेशियरों पर पड़ा है। तापमान बढ़ने से ग्लेशियर पिघल रहे हैं और एक अनुमान के अनुसार 20वीं शताब्दी में औसतन एक से दो मिमी प्रतिवर्ष की दर से समुद्र तल के स्तर में औसतन वृद्धि ग्लेशियरों के पिघलने से हुई है और जब ग्लेशियर पिघलते है तो समुद्र तल के स्तर में वृद्धि हो जाती हैं। पिछलें कुछ दशकों से दुनिया के सभी देशों में तूफान बहुत आये हैं व उनकी प्रचण्डता में भारी वृद्धि हुई है, परिणाम स्वरूप जान माल की हानि के अलावा हमारे वनों एवं कृषि पर इनका प्रतिकूल प्रभाव देखने में आया है। एक अध्ययन के अनुसार पाया गया है कि समुद्र स्तर बढ़ना भी तूफान अधिक आने का कारण है। जलवायु परिवर्तन से सभी देश अलग–अलग कारणों से प्रभावित होगें। विकासशील देश जिनमें हमारा देश भी शामिल है, भविष्य में जलवायु परिवर्तन से बुरी तरह से प्रभावित होगा। जलवायु परिवर्तन का भारतीय उपमहाद्वीप पर बहुत प्रतिकूल प्रभाग देखने को मिल सकता है। जिसमें सबसे अधिक प्रभाव गर्म जलवायु व तापमान में वृद्धि से होगा, क्योंकि जिस प्रकार अकेले भारत में ही अंधाधुन्द औद्यौगीकरण व रोज सड़को पर उतरती नयी कारें, बसें, ट्रक, ट्रेन व अन्य दो पहिये वाहनों से प्रदूषण बढ़ता है उससे तापमान में भी वृद्धि हो रही है व शहरों पर धुए की परत जमा हो जाती है। जिसका प्रभाव हमारे स्वास्थ्य व जलवायु पर साफ दिखता है और इसी का परिणाम है कि फसलों के उत्पादन में कमी, समुद्री जल में वृद्धि होने से समुद्र के किनारे बसे शहरों के डूबने का खतरा, सूखा, बाढ़ व प्रतिकूल मौसम का प्रभाव अभी से देखने को मिल रहा है। गर्मी, पिछले कुछ वर्षो में बढ़ी है व इसका मौसम भी लम्बा होता जा रहा है। सर्दी का मौसम छोटा होता जा रहा है पर ठंडक बहुत ज्यादा इस छोटे सर्दी के मौसम में पड़ती है। मौसम के इस प्रतिकूल प्रभाव का असर जैव विविधता पर पड़ रहा हैं। मौसम की प्रतिकूलता का प्रभाव निम्न प्रकार से देखने को मिल सकता हैः–

1. मक्का, चावल व गेहूँ जैसी अन्न वाली फसलों का उत्पादन 20 से 25 प्रतिशत तक कम हो सकता है। नारियल जैसी फसलों का उत्पादन बढ़ सकता है। पशुपालन के क्षेत्र में गिरावट हो सकती हैं। सेब का उत्पादन घट सकता हैं।

2. 10 से 25 प्रतिशत बाढ़ या सूखा बढ़ सकता है, जिससे हमारी फसलों का उत्पादन बुरी तरह प्रभावित हो सकता हैं।

शुद्ध पीने के पानी की आपूर्ति में 40 से 45 प्रतिशत की कमी आ सकती है।

सबसे हानिकारक प्रभाव हमारे वनों, वन्य जीवों व जैव विविधता पर पड़ सकता है। कुछ पेड़ पौधों की प्रजातियॉ समाप्त हो सकती है, जबकि कुछ कीट पतंगो की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो सकती है। गर्म जलवायु से मलेरिया जैसी बीमारियों में वृद्धि होने से मृत्यु दर में भी वृद्धि हो सकती है।

जलवायु परिवर्तन से हमारी अर्थव्यवस्था की गति भी कम हो सकती है। स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव, गरीबी बढ़ने व खाद्य सुरक्षा के लिये खतरा हो सकता है। भारत की समुद्री सीमा 7520 किमी है, जो कि भारतीय महासागर, अरब सागर व बंगाल की खाड़ी से लगती है। ग्लेशियरों के पिघलने से इन क्षेत्रों में बसी बस्तियाँ प्रभावित हो सकती हैं।

भारत की जलवायु मानसून प्रधान जलवायु कहलाती है जो कि यहाँ का विशेष मौसम है क्योंकि इसी मौसम में यहॉ लगभग 80 प्रतिशत वर्षा होती है और जून से सितम्बर तक यह मौसम रहता है। पिछले कुछ दशकों में देखने में आया है कि इन महीनों में वर्षा कम गिरती है तथा इसकी अवधि भी कम होती जा रही है। परिणाम स्वरूप देश के कई हिस्सों में सूखा तथा पीने के पानी की गम्भीर समस्या हो रही है। भूजल स्तर में निरन्तर गिरावट हो रही है, फसलों के वृद्धि काल में भी बढ़ोत्तरी देखने में आ रही है।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव बहुत सी उत्पादन क्रियाओं या सभी उत्पादन प्रक्रियाओं पर पड़ सकता है। भविष्य में कृषि एवं वानिकी उत्पादन कठिन होगा क्योंकि विभिन्न कारकों की आपस में प्रतिक्रिया देखने को मिलेगी। उदाहरणार्थ गर्म तापमान व सूखे मौसमी वातावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड (Co_2) की वृद्धि से उत्पादकता गिर सकती है। यदि पौधों को अधिक Co_2 की एकाग्रता में उगाया जाय, तब पौधों के द्वारा पानी का उपयोग कम होगा जिससे पौधों की वृद्धि कम होगी। फलतः उत्पादन कम होगा। उत्पादन कम होने के साथ ही गुणवत्ता में भी गिरावट आयेगी।

गर्म एवं सूखी गर्मियों में पौधों की वृद्धि एवं चारागाह विकास कम होगा, परिणाम स्वरूप उत्पादन कम होगा। कई प्रकार की बीमारियॉ, कीट पंतगे व खरपतवार पैदा होने का खतरा बढ़ जायेगा। विशेषकर कीट पतंगों की नई प्रजातियाँ भी विकसित हो सकती हैं। जिस पर नियंत्रण करना कठिन होगा।

जलवायु परिवर्तन जैव तंत्र की गुणवत्ता की क्षेत्रता को प्रभावित करेगा, परागण व तत्व चक्र जो कि पौधों द्वारा भूमि से लिये जाते है, ये सभी जलवायु परिवर्तन से प्रभावित होंगे।

संक्षेप में गर्म होता वातावरण, जल उपलब्धता में बदलाव, भूमि उपयोग और जैव तंत्र को प्रभावित करेगा और नकारात्मक प्रभाव पादप वृद्धि, भूनिर्माण व उत्पादन पर पड़ सकता है।

वेदपाल सिंह,
वैज्ञानिक–सी

खम्हेर–एक बहुद्देशीय कृषि वानिकी वृक्ष

डॉ0 ननिता बेरी, वैज्ञानिक–ई, सौरभ दुबे, वरिष्ठ तकनीशियन एवं निकिता राय, तकनीशियन
वन संवर्धन, वन प्रबंधन एवं कृषि वानिकी प्रभाग – उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, ज़बलपुर

कृषि वानिकी एक भूमि उपयोग की ऐसी पद्धति है, जिसमें दो या दो से अधिक वृक्ष एवं फसलों को एक भू खण्ड में एक साथ या एक के बाद एक लगाया जाता है। भारत देश के घटते वन क्षेत्र, बढ़ती जनसंख्या, भूमि क्षरण, औद्योगीकरण, कम होते चारागाह एवं कृषि योग्य भूमि, चारा एवं जलाऊ लकड़ी की कमी, इन सबको निकट भविष्य में कृषि वानिकी पद्धति के द्वारा ही पूरा किया जा सकता हैं। साथ ही इस भुमि पर वृक्ष आवरण को बढ़ाया जा सकता है। यह एक परम्परागत रुप से अपनायी जाने वाली पद्धति है, परंतु उचित वृक्ष का चयन, उसके रोपण की विधि तथा समयानुसार होने वाले प्रबंधन प्रक्रिया का ज्ञान न होने के कारण यह पद्धति आज भी बहुत कम किसानों के द्वारा अपनाय़ी जा रही है। सामान्यतः कृषि वानिकी पद्धति प्रक्षेत्र वानिकी के रूप में प्रचलित थी लेकिन वैज्ञानिक तौर

तरीको से इसे 90 के दशक में ही शुरू किया गया। इसके अंतर्गत उचित वृक्ष का चयन, जमीन की प्रकृति, वातावरण एवं बाजार की माँग के अनुसार, रोपण की उन्नत तकनीक पद्धति का प्रबंधन किया जाता है। वर्ष 2013 वन सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार भारत में कुल 11.15 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में कृषि वानिकी को अपनाया गया है। इन सभी समस्याओं के निदान हेतु कृषि वानिकी में ऐसे वृक्षों का चुनाव आवश्यक हो जाता है, जो कि शीघ्र बढ़ने वाले तथा बहुद्देशीय हों, खम्हेर इन विशेषताओं को पूरा करने वाला ऐसा ही एक महत्वपूर्ण वृक्ष है।

खम्हेर मध्यम ऊँचाई वाला लेमियेसी परिवार का पर्णपाती वृक्ष है, जिसका वानस्पतिक नाम (*मेलिना अर्बोरिया रोक्सब.*) है। संस्कृत में सिन्धुपर्णी कहे जाने वाले खम्हेर वृक्ष को क्षेत्रीय भाषाओं में अलग–अलग नामों से जाना जाता है। इनमें प्रमुख रुप से शिवन, गम्भारी, गमारी व गम्हार तथा सफेद सागौन, अंग्रेजी में बीचवुड, कश्मीर ट्री आदि प्रमुख हैं। भारत के अनेक क्षेत्रों में पाया जाने वाला यह वृक्ष एशिया पेसिफिक के देशों में भी पाया जाता है। भारत में यह हिमालय के ऊँचाई वाले क्षेत्रों से लेकर दक्षिण भारत के पठारों तक पाया जाता है। विभिन्न प्रकार के नमीयुक्त वनों से लेकर शुष्क पर्णपाती तथा मिश्रित वनों में खम्हेर पाया जाता है। मध्यभारतीय साल वनों में भी यह पाया जाता है, जिसकी ऊँचाई 30 मीटर तक हो सकती है। इसका तना सीधा बढ़ने वाला होता है, जिसमें ऊपरी भाग में अनेक शाखाएँ होती है, जिससे यह घना छायादार छत्र बनाता है। इस वृक्ष की छाल हल्का पीलापन लिए हुए धूसर रंग की होती है। खम्हेर वृक्ष में फरवरी से मार्च के माह में पुष्पन होने लगता है एवं फूल भूरे पीले रंग के होते हैं। अप्रैल से जून माह तक फल लगते हैं जो कि कच्चे होने पर हरे तथा पकने के बाद पीले रंग के हो जाते हैं तथा हर फल में एक से दो बीज होते हैं।

परिवहन शुल्क मुक्त वृक्ष – खम्हेर वृक्ष को प्रोत्साहित करने हेतु सन् 2012 में मध्य प्रदेश वन विभाग द्वारा खम्हेर वर्ष के रुप में मनाया गया था तथा इसे परिवहन शुल्क से भी मुक्त किया गया था एवं किसानों के खेतों में लगाने के लिए कृषि समृद्धि योजना का क्रियान्वयन भी किया गया ।

खम्हेर वृक्ष का महत्व – खम्हेर वृक्ष की हल्की एवं मजबूत लकड़ी लघु अवधि (12 से 15 वर्ष) में ही परिपक्व हो जाती है। इसकी लकड़ी हल्का पीलापन लिए हुए होती है, जिसमें

सागौन की लकड़ी की तरह हल्की धारियाँ या रेशे दिखाई पड़ते हैं। हल्की एवं नर्म लकड़ी होने के कारण इस पर नक्काशी करना आसान होता हैं जिससे छोटे प्रतीक बनाए जाते हैं। इस लकड़ी का प्रयोग विभिन्न प्रकार के भवन निर्माण संबंधित सामान जैसे – दरवाजे एवं खिड़कियों की चौखट, फर्नीचर आदि बनाने में किया जाता है। खम्हेर लकड़ी का उपयोग प्लाईवुड कारखानों में भी किया जाता है। साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के पैकिंग केस बनाने, वाद्ययंत्र तथा खेल से संबंधित वस्तुओं को बनाने में भी किया जाता है। इसका उपयोग जलाऊ लकड़ी के रुप में भी किया जाता है।

खम्हेर के औषधीय उपयोग – खम्हेर के पंचांग (फल, फूल, जड़, पत्तियाँ तथा छाल) का उपयोग विभिन्न प्रकार के रोगों जैसे – ज्वर, अर्श तथा हृदय संबंधित विकारों के उपचार के लिये किया जाता है। खम्हेर की जड़ दृशमूला का एक महत्वपूर्ण घटक है। इसके फूल बलदायक तथा फल का उपयोग उदर सम्बंधी रोगों के उपचार में होता है। इसकी जड़ का काढ़ा, ज्वर तथा अपचन में दिया जाता है। मूल व छाल का प्रयोग सर्पदंश के उपचार में किया जाता है। इसकी पत्तियों का लेप सिरदर्द दूर करने में किया जाता है।

खम्हेर के रोग, कीट तथा नियन्त्रण – फफूंद जनक रोगों, (*Grithosphaeria gmelina*) के कारण इसका ऊपरी तना तथा शाखाएं सूख जाती हैं एवं निचले हिस्से से बहुत सी शाखाएं निकलने लगती हैं, जो कि इसके मुख्य तने की बढ़त को प्रभावित करती हैं। खम्हेर में प्रायः तना छेदक इल्ली (Indarbela quadrinotata) को देखा जाता है, जो कि इसकी लकड़ी की गुणवत्ता को प्रभावित करती है तथा इसके प्रकोप से वृक्ष के सूखने की संभावनाएं भी रहती है।

तना छेदक इल्ली के उपचार के लिए नुवान के घोल (2 मि. ली. प्रति लीटर पानी में) को इन्जेक्शन की सहायता से संक्रमित भाग में माह में दो बार डालकर नियन्त्रण किया जा सकता है।

खम्हेर का कृषि वानिकी पद्धति में प्रयोग– यह प्रयोग वन संवर्धन, वन प्रबंधन एवं कृषि वानिकी प्रभाग, उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर के अनुसंधान क्षेत्र में किया गया जिसमें 5 वर्षीय खम्हेर वृक्षों के साथ छाया प्रिय फसल जैसे हल्दी, अदरक व सतावर एवं खम्हेर वृक्षों को अकेले ऊगाया गया। अनुसंधान के दो वर्ष बाद पाया गया कि फसलों के साथ खम्हेर वृक्षों की वृद्धि एकल वृक्षों की तुलना में अधिक होती है। कृषि वानिकी पद्धति में खम्हेर वृक्षों में फलों की संख्या अधिक व उनका आकार एकल खम्हेर वृक्षों की तुलना में बड़ा (तालिका–1) था। साथ ही साथ यह भी देखा गया कि कृषि वानिकी पद्धति में लगे हुए वृक्षों में कीट एवं रोगों का प्रभाव कम था जबकि एकल खम्हेर वृक्षारोपण में अधिकांश वृक्षों में तना छेदक इल्ली व शीर्ष भाग के सूखने जैसी समस्याएं दर्ज की गयीं।

कृषि वानिकी पद्धति में खम्हेर के फल

एकल वृक्षारोपण में खम्हेर के फल

कृषि वानिकी पद्धति में खम्हेर के फलों का आकार

एकल वृक्षारोपण में खम्हेर के फलों का आकार

तालिका 1– खम्हेर (5 वर्षीय) वृक्ष का कृषि वानिकी पद्धति में प्रदर्शन

वृद्धि परिमापक	कृषि वानिकी पद्धति में खम्हेर वृक्ष	एकल खम्हेर वृक्षारोपण
औसत ऊँचाई (मी.)	6.77	5.66
औसत तने की गोलाई (से.मी.)	31.37	25.11
औसत वृक्ष छत्र (मी.)	4.09	3.45
औसत प्रति गुच्छे में फलों की संख्या	17.09	9.46
औसत फलों की लम्बाई व चौड़ाई (से.मी.)	2.75×3.87	1.87×1.44

निष्कर्ष – अतः उपरोक्त निष्कर्ष द्वारा यह सिद्ध होता है, कि खम्हेर कृषि वानिकी हेतु उपयुक्त वृक्ष है जो कि मृदा के पोषक तत्वों की मात्रा को बनाए रखने में सहायक है। छाया प्रिय फसलों के उत्पादन के लिए भी यह उत्तम वृक्ष है, जो कि किसानों की आय में बढ़ोत्तरी में भी सहायक सिद्ध होगा। अतः कृषक भाई खम्हेर आधारित कृषि वानिकी पद्धति अपनाकर अपनी आय में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं।

डॉ0 ननिता बेरी
वैज्ञानिक–ई

औषधीय पौधों पर आधारित कृषि वानिकी

डॉ0 ए.के. पाण्डेय, वैज्ञानिक–जी एंव अजय गुलाटी, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
विस्तार प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

परिचय

फसल उत्पादन के साथ पेड़ों की खेती करने को कृषि वानिकी कहा जाता है। यह पद्धति भूमि प्रयोग का वह संयुक्त नाम है जिसमें पेड़ रूपी बारहमासी के साथ फसलों की खेती भी की जाती है। कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए यह अभिनव पहल है जो जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को रोकने में अहम भूमिका निभाती है। कृषि वानिकी से एक फसल पर निर्भरता में कमी आती है और किसी भी मौसम में चाहे गर्मी हो या सर्दी कृषि उत्पादन को बनाए रखने में मदद मिलती है। अतः किसानों को कृषि वानिकी को अपनाना चाहिए, क्योंकि इससे केवल आर्थिक लाभ ही नहीं बल्कि अन्य दीर्घकालिक लाभ भी प्राप्त होते हैं। कृषि वानिकी से मृदा एवं जलसंरक्षण में अत्यधिक मदद मिलती हैं, पेड़ों की जड़ें मिट्टी को बांधने में मदद करती हैं और पानी के अतिरिक्त बहाव को भी रोकती हैं। कृषि वानिकी में विविध वृक्ष लगाए जा सकते हैं। वृक्षों के बीच के खाली स्थान में विभिन्न कृषि फसलों व औषधीय पौधों की खेती की जा सकती है। फसलों के साथ–साथ पेड़ लगाने से कृषि वानिकी किसानों को दोहरा लाभ देती हैं।

कुछ स्थानों पर अनियमित वर्षा के कारण बाढ़ की स्थिति उत्पन्न होने या कम वर्षा होने के कारण सूखे की स्थिति उत्पन्न होने से वहां के किसानों को आजीविका के साधन जुटाने के लिए मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। ऐसे में किसान या तो शहरों की तरफ कूच कर जाते हैं या फिर मजदूरी करने पर मजबूर होते हैं। ऐसे क्षेत्रों में कृषि वानिकी वरदान साबित हो सकती है। कृषि वानिकी से छोटे एवं मझोले किसानों को अपनी आय में वृद्धि करने का मौका मिलता है और उन्हें धन कमाने व रोजगार के लिए गांव से शहरों की ओर पलायन नहीं करना पड़ता है।

कृषि वानिकी में मौसम, जलवायु एवं मृदा के अनुसार वृक्षों व फसलों का चयन बहुत महत्वपूर्ण होता है। फसलों का चुनाव व वृक्षों का चयन उस क्षेत्र की जलवायुवीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाता है। वर्तमान में कृषि वानिकी के अनेक मॉडल प्रचलित हैं, जिसमें वानिकी वृक्ष, जैसे पॉपलर, नीलगिरी (यूकेलिप्टस), शीशम, वर्मा ड्रेक, कीनू, बकैन आदि को कृषि फसलों के साथ लगाया जा सकता है। कृषि वानिकी में फलदार वृक्ष जैसे अमरूद, बेर, चीकू, अनार, आँवला आदि का भी रोपण किया जा सकता है। किसान अपनी आजीविका के अवसर बढ़ाने के लिए पेड़ों से फल, तेल, चारा, ईंधन एवं इमारती लकड़ी और औषधीय पौधों की पैदावार प्राप्त कर बिक्री कर सकते हैं। कुछ औषधीय वृक्ष जैसे बेल, लसोड़ा, तेज पत्ता आदि भी कृषि वानिकी में लगाए जा सकते हैं। इन वृक्षों के बीच में अंतरवर्तीय फसल के रुप में कुछ औषधीय पौधें, जैसे अश्वगंधा, सर्पगंधा, कालमेघ, एलोवेरा, सतावर, पृणपर्णी, सालपर्णी आदि का भी रोपण किया जा सकता है।

कृषि वानिकी के लाभ

1. पर्यावरण की दृष्टि से यह सबसे बेहतर विकल्प है जो किसी भी तरह से पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुंचाता हैं।

2. कृषि वानिकी में हानि होने की सम्भावना बहुत कम होती है।

3. कृषि वानिकी में कृषि के साथ–साथ पेड़ों से अधिक एवं निरंतर आय प्राप्त होती है।

4. जैव विविधता को बनाए रखने में अहम भूमिका निभाती है।

5. पेड़–पौधों द्वारा कार्बन का उपभोग (कार्बन सीक्वेसट्रेसन / पृथक्करण) करने पर कार्बन उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है।

6. कृषि वानिकी के कुछ सामाजिक महत्व भी हैं जो किसानों को गांवों को छोड़कर जाने से रोकते हैं, क्योंकि अधिकांश छोटे किसान अधिक आय न होने पर गांवों से पलायन कर शहरों की ओर प्रवास कर जाते हैं।

7. कृषि वानिकी का सबसे बड़ा लाभ यह है कि फसल का उत्पादन निरंतर बढ़ता रहता है। साथ ही कृषि वानिकी सतत् विकास में सहायक है।

8. पॉपलर के पौधे लगाने पर लागत कम (लगभग 30 हजार रुपये प्रति एकड़) होती हैं, लेकिन इनके परिपक्व होने पर लकड़ी का दाम अच्छा मिलता हैं। इस प्रकार लगभग प्रति एकड़ भूमि पर 2 से 3 लाख रुपये का लाभ कमाया जा सकता हैं। लकड़ी के दाम पर भी लाभ निर्भर करता हैं।

9. कृषि वानिकी के लिए मौसम पर निर्भरता कम रहती हैं बल्कि इसके लिए प्रायः सभी मौसम अनुकूल हैं।

जैसा कि विदित हैं कि जड़ी–बूटियों के अवैज्ञानिक एवं विनाशवान दोहन से कई बहुमूल्य औषधीय पौधे लुप्त हो चुके हैं या लुप्त होने के कगार पर हैं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए हमें प्रकृति की इस अमूल्य धरोहर के संरक्षण तथा व्यावसायिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए वैज्ञानिक ढंग से इनकी खेती को लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता हैं। उत्तराखण्ड एक ऐसा राज्य हैं जो कि औषधीय पौधों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करके अपनी आर्थिक स्थिति का सुधार भी कर सकता हैं। क्योंकि यहां इनकी खेती के लिए अनुकूल वातावरण हैं। उत्तराखण्ड के निचले पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि वानिकी के साथ औषधीय पौधों की खेती की अपार संभावनायें हैं। यहाँ की जलवायु औषधीय पादपों के कृषिकरण के लिए सर्वथा अनुकूल हैं। इन क्षेत्रों में विशेषकर असिंचित क्षेत्रों में औषधीय पौधे जैसे आंवला, अनार, बेलपत्र, लसौडा, तेजपत्र, कड़ीपत्ता, ग्वारपाठा, तुलसी, अश्वगंधा, कालमेघ, सतावर व गुडमार इत्यादि को कृषि वानिकी पद्धति में बड़े पैमाने पर उगाया जा सकता हैं। कृषि वानिकी के अंतर्गत अधिक लाभ देने वाले औषधीय पौधों का रोपण किया जा सकता हैं। इनमें से कृषि वानिकी के लिए आँवला तथा ग्वारपाठा उपयुक्त हैं, आँवला तथा ग्वारपाठा दोनों असिंचित क्षेत्र की प्रजातियां हैं तथा दोनों का बाजार उपलब्ध हैं। इसलिए दोनों को एक प्रारूप में एक साथ खेतों में लगा कर अधिक आय अर्जित की जा सकती हैं। तथा इन दोनों औषधियों को उगाने की विधियाँ, प्रारूप में उत्पादन का तथा आय–व्यय का विवरण निम्न प्रकार हैं।

आँवला

आँवले का वृक्ष संपूर्ण भारत में लगभग सभी जगह पाया जाता हैं। आँवले की खेती से कम खर्च में भूमि से अधिक आय अर्जित की जा सकती हैं। भारत में इसकी खेती पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रतापगढ़, फैजाबाद, आजमगढ़, बरेली तथा सुल्तानपुर में की जाती हैं। तथा देश के अन्य भागों मे तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश एंव राजस्थान में भी इसकी खेती की जाती है।

उपयोग

आँवले के फल विटामिन सी के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इसमें प्रोटीन, विटामिन ए, कैल्शियम, आयरन, फॉस्फोरस, कैरोटीन तथा फाईबर (रेशा) प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इसके अलावा इसमें गैलिक अम्ल, लोहा, जस्ता, तांबा, क्रोमियम, आदि खनिज भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। यह शरीर में बीमारियों से लड़ने की शक्ति प्रदान करता हैं। इसका नियमित सेवन सर्दी, जुकाम, दमा, श्वास नली के संक्रमण, कब्ज व गठिया को रोकने में अत्यधिक लाभकारी हैं। इसके फल चटनी व मुरब्बे के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। आँवले की छाल, पत्ते, व फलों का दवाईयां बनाने में उपयोग किया जाता हैं। इसका फल खाने, अचार मुरब्बे तथा च्यवनप्राश बनाने में उपयोग होता हैं। आँवले के फल के चूर्ण का प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता हैं। त्रिफला में इसका मुख्य घटक के रूप में उपयोग होता हैं। अनेकों सौंदर्य प्रसाधन जैसे आँवला तेल व शैम्पू आदि भी आँवले से बनाएं जाते हैं। आँवला मधुमेह के रोगियों के लिए लाभदायक होता हैं।

भूमि और जलवायु

आँवले की अच्छी उपज के लिए गहरी बलुई दोमट नमीयुक्त भूमि जो लगभग 2 मी0 गहरी हो, अच्छी रहती हैं। आँवले की खेती ऊसर, बंजर व अनुपजाऊ भूमि में भी की जा सकती हैं। कम सिंचाई वाले क्षेत्रों में भी आँवले की खेती की जा सकती हैं क्योंकि इसमें अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती हैं। पानी की अच्छी निकासी वाली भूमि इसकी

खेती के लिए उपयोगी होती हैं। 7 से 8.5 के बीच का पी. एच. मान इसकी खेती के लिए उपयुक्त हैं।

इसे ठंडे वातावरण से लेकर अत्यधिक गर्मी वाले क्षेत्रों में उगाया जा सकता हैं। प्रारंभ के दो–तीन वर्ष पाले व गर्मी/सूखे से नुकसान हो सकता हैं। यह नमी वाले क्षेत्रों में अच्छा उगता हैं लेकिन शुष्क वातावरण में भी उग सकता हैं। आँवला 400 मि.मी. से ज्यादा वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह बढ़ता हैं।

उन्नत किस्में

कंचन, कृष्णा, चकैय्या, एन0ए0 6, एन0ए0 7, बनारसी, आनन्द–1 आदि आंवले की उन्नत किस्में हैं। अधिक पैदावार के लिए हमेशा दो या दो से अधिक किस्में लगानी चाहिए। बीच में 5 प्रतिशत पौधें देसी किस्म के पेड़ लगाने से उपज बढ़ जाती हैं।

पौधा रोपण

मई–जून के महीने में 60 से.मी.×60 से.मी.×60 से.मी. आकार के गड्ढे 6 मी0×4मी0 अथवा 5मी0×5मी0 की दूरी पर खोद लेने चाहिए। गड्ढे खोदने के बाद 2.5 किग्रा सूखी अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद मिट्टी में मिलायें। आँवले के पौधे लगाने के लिए जुलाई–अगस्त का समय उपयुक्त होता हैं। पौधे को गड्ढे में लगाने से पहले पोलिथिन की थैली को काट कर हटा लें। पौधे को गड्ढे में लगाने के बाद मिट्टी भरें तथा मिट्टी को ठीक से दबायें। पौधा लगाने के बाद पौधे में पानी दें। पौधे में भूमि स्तर पर एक ही तना रहने दे। भूमि से 2 से 2.5 फुट की ऊंचाई पर अधिक फल लेने के लिए 5 से 7 तने रखने चाहिए।

फसल की सिंचाई एवं देख–रेख

आँवले के पौधे को ग्रीष्मकाल में एक सप्ताह के अंतर में और शीतकाल में महीने में दो बार सिंचाई करनी चाहिए। आँवले के फूल आने लगे तो इसकी सिंचाई नहीं करनी चाहिए। आंवले के पौधे की कटाई और छंटाई दिसम्बर के महीने में करनी चाहिए। छंटाई करते समय पौधे के पांच से सात अच्छे और स्वस्थ तनों को छोड़ देना चाहिए। इसकी अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए पौधे की निराई–गुड़ाई वर्ष में दो से तीन बार करनी चाहिए। आँवले और ग्वारपाठा की फसल संयुक्त रूप से लेने पर सिंचाई, निराई, गुड़ाई एक साथ करने से उसकी लागत में कमी आती हैं एवं अधिक आय प्राप्त की जा सकती हैं।

उत्पादन एंव आय व्यय का ब्यौरा

आँवले का ग्राफ्टेड वृक्ष 3 वर्ष उपरांत फल देना शुरू कर देता हैं। शुरू में औसतन–10 से 15 किग्रा फल प्रति पेड़ प्राप्त होते हैं। 10 से 12 वर्ष पुराने कलमी पेड़ों से औसतन 50 से 60 किग्रा प्रति पेड़ फल प्राप्त होने शुरू हो जाते है। आँवले का वृक्ष लगभग 30 से 40 वर्ष तक अच्छा उत्पादन देता हैं। पौधारोपण करने के 4 वर्ष से 10 वर्ष तक कुल प्रतिवृक्ष आँवले के फल दो क्विंटल प्राप्त हो तो रुपये 1000/क्विंटल की दर से एक हैक्टेयर से लगभग 6 लाख रूपये की आय प्राप्त की जा सकती हैं।

ग्वार पाठा (एलोवेरा)

परिचयः

घृत कुमारी अथवा ग्वार पाठा के नाम से प्रचलित एलोवेरा अफ्रीका की गरम जलवायु में पाया जाने वाला मांसल पौधा हैं। लेकिन इसकी औषधीय गुणवत्ता के कारण यह विश्व के अधिकतर देशों में उगाया जाता हैं। भारत में यह पौधा व्यावसायिक तौर पर सौंदर्य प्रसाधनों तथा आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण में प्रयोग किया जाता हैं। इस पौधे की मांसल पत्तियों को ही व्यावसायिक रूप से प्रयोग में लाया जाता हैं। इसकी पत्तियों का उपयोग औषधि, सौंदर्य प्रसाधन, सब्जी तथा अचार बनाने के लिए भी किया जाता हैं। इसकी पत्तियों से निकाली गई जेल का उपयोग शैम्पू, क्रीम तथा मोइस्चराजर बनाने में होता हैं। पत्तियों का कसैला स्वाद ही इसके औषधीय होने का सूचक हैं। यह पाचन में भारी, स्निग्ध, कटु, शीतल और विषांक से युक्त हैं। घृत कुमारी दस्तावर, शीतल, रसायन, मधुर, पुष्टिकारक, विष गुल्म, प्लीहा, यकृत तथा त्वचा रोग नाशक हैं। अल्प मात्रा में यह दीपन ,पाचन, भेदन, यकृत, उत्तेजक और बड़ी मात्रा में विरेचक तथा कृमिधन हैं। इसका उपयोग जलने के उपचार में भी किया जाता हैं।

जलवायु, भूमि तथा मृदाः

यह पौधा भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में उगाया जा सकता हैं। यहां तक कि ऊष्ण तथा कम उपजाऊ भूमि पर भी इसकी खेती की जा सकती हैं। यद्यपि इसे कटिबंधीय तथा पूरे उपकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाया जाता हैं। इस प्रजाति की खेती के लिए अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती हैं अतः यह मरुस्थलीय भूमि की एक उपयुक्त प्रजाति है और इसकी खेती राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश तथा अन्य कम वर्षा वाले राज्यों में की जाती हैं। यद्यपि एलोवेरा की खेती कम उपजाऊ तथा लवणीय भूमि में सुगमता पूर्वक की जा सकती हैं। फिर भी सिंचाई वाली तथा उपजाऊ भूमि पर इसकी खेती से अत्यधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती हैं।

पौधरोपण का समय तथा रोपण विधियाँः

एलोवेरा की खेती के लिए अधिक गहरी जुताई की आवश्यकता नहीं होती हैं क्योंकि इसकी जड़े केवल 20 से 30 सेमी. तक की गहराई तक मिट्टी में जाती हैं मिट्टी तथा जलवायु के आधार पर एक या दो जुताई ही पौधरोपण के लिए पर्याप्त होती हैं। भूमि को आवश्यकतानुसार मन चाही क्यारियों में विभाजित किया जा सकता हैं। बड़े पौधों से प्राप्त लघुपादपों (Bulbs) को जुलाई–अगस्त के महीने में लगाया जाता हैं, जिससे पौधे अधिक फलते फूलते हैं तथा उनमें जीविविता बहुत ही अधिक होती हैं। सिंचाई वाले क्षेत्रों में इसका रोपण सर्दियों में नवंबर माह से फरवरी माह के बीच किया जाता हैं। पौधरोपण के लिए तीन से चार माह के पौधें प्रयोग में लाए जाते हैं। पौधों को 15 सेमी. गहरे गड्ढो में 60×60 सेमी. (लाईन से लाईन एवं पौधे से पौधा) की दूरी पर लगाया जाता हैं। एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 28000 से 30000 पौधों की आवश्यकता होती हैं। भूमि तैयार करते समय मिट्टी में 10–12 टन गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर की दर से मिलाने पर फसल अच्छी होती हैं। इसके अतिरिक्त राख को भी पौधरोपण के समय गड्ढों में डाला जा सकता हैं।

सिंचाई, निराई, गुड़ाई तथा खरपतवार निकालनाः

पौधों में प्रथम सिंचाई की आवश्यकता पौधरोपण के तुरंत बाद पड़ती हैं। तत्पश्चात् पौधे स्थापित होने तक 2–3 बार सिंचाई की जाती हैं। बाद में एक साल में 4–6 बार सिंचाई इसकी फसल के लिए पर्याप्त होती हैं। पत्तियों को काटने (तोड़ने) के बाद एक हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। यदि घृत कुमारी की फसल को खरपतवार रहित रखा जाय व समय–समय पर निराई गुड़ाई की जाय तो पैदावार अच्छी होती हैं। साल में 2–3 बार खरपतवार साफ करने तथा हल्की गुड़ाई करने से पौधों की वृद्धि अच्छी होती हैं तथा पुराने पौधों से नये पौधे अधिक संख्या में बनते हैं। पहली निराई–गुड़ाई पौधरोपण के प्रथम माह के अंदर कर देनी चाहिए। निराई के दौरान कमजोर, रोगग्रस्त तथा सूखे पौधों को खेत से हटा देना चाहिए। प्रथम वर्ष में रोपण के दौरान भूमि का लगभग 40 प्रतिशत भाग खाली रह जाता हैं तथा कुछ पौधे नष्ट भी हो जाते हैं। अतः बीच–बीच में पुनः पौधरोपण कर देना चाहिए जिससे एक निश्चित क्षेत्रफल से अधिक से अधिक पैदावार ली जा सके। इसके अलावा घृत कुमारी के पौधों के बीच दूसरी कृषि फसलें जैसे दाल आदि की भी खेती की जा सकती हैं। घृत कुमारी के साथ जिन फसलों को सुगमता से उगाया जा सकता हैं उनमें क्लस्टर बीन, मूंगफली, तिल, इसबगोल, धनियां, जीरा आदि मुख्य हैं। लेकिन इन फसलों को प्रथम वर्ष में ही उगाना चाहिए क्योंकि इन फसलों को लगातार घृत कुमारी की फसल के साथ उगाने पर घृत कुमारी की फसल की गुणवत्ता तथा पैदावार पर विपरीत प्रभाव पड़ता हैं। आँवला रोपण के प्रथम व द्वितीय वर्ष में एलोवेरा की फसल का उत्पादन अच्छा होता हैं क्योंकि आँवले के वृक्ष छोटे–छोटे होते हैं तथा उसकी छाया कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती हैं।

कीट एवं व्याधियांः

यद्यपि घृत कुमारी की फसल को अधिकतर कीट व व्याधियां प्रभावित नहीं करते हैं तथापि इनको कभी–कभी रस चूसक कीट तथा पत्तियों पर धब्बे देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त कभी–कभी दीमक का प्रकोप भी देखने को मिलता है जिसे उचित समय पर हल्की सिंचाई के द्वारा दूर किया जा सकता है। इसको किसी खास कीटनाशक व रोगनाशक की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

फसल की कटाई ,पैदावार तथा आय व्यय का ब्यौरा–

घृत कुमारी के पौधों से व्यावसायिक पैदावार दूसरे वर्ष से ली जा सकती हैं तथा पांच वर्ष तक यह पैदावार जारी रहती हैं। सामान्यतः प्रतिवर्ष 3–4 बार पत्तियों का विदोहन किया जाता हैं। एक हेक्टेयर फसल से लगभग 200 क्विंटल हरी पत्तियां प्रतिवर्ष प्राप्त होती हैं। दस साल तक कुल खर्च लगभग रूपये दो लाख अस्सी हजार होता हैं। 1600

क्विंटल पत्तियों का दस साल में उत्पादन होता हैं। 1600 क्विंटल पत्तियों का मूल्य तीन सौ रूपये क्विंटल की दर से रूपये चार लाख अस्सी हजार का कुल लाभ प्राप्त होता हैं। तथा दस साल में कुल शुद्ध लाभ दो लाख रूपये प्राप्त होता हैं।

डॉ0 ए.के.पाण्डेय
वैज्ञानिक–जी

सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यांकन में कृषि वानिकी का महत्व

रामबीर सिंह, वैज्ञानिक–डी एवं हिमशिखा, कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता
विस्तार प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

सामान्य तौर पर जब वृक्षों को फसलों/झाड़ियों के साथ एक विशिष्ट प्रकार के समायोजन में प्रयोजित लाभ पाने के लिए लगाया जाता हैं, तो ये ''कृषि वानिकी'' कहलाती हैं।

कृषि वानिकी का सामाजिक–आर्थिक मूल्यांकन एक माध्यम हैं जिसके द्वारा किसी व्यक्ति, समूह, समुदाय अथवा संगठन के सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को समझा जाता हैं। कृषि के दृष्टिकोण से इस प्रकार का मूल्यांकन जब किसान का उसके द्वारा खेतों में अपनायी गयी विभिन्न पद्धतियों के साथ किया जाता है, तो यह कृषि वानिकी से सम्बन्धित ज्ञान अर्जित करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन बन जाता हैं।

किसी भी प्रकार का सामाजिक–आर्थिक मूल्यांकन किसी विशेष कृषि वानिकी पद्धति के अध्ययन में दो प्रकार से महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। एक तो यह कि किन कारणों के प्रभाव से कृषि वानिकी किसी क्षेत्र विशेष में अपनायी जा सकती हैं दूसरा, कि किस प्रकार विभिन्न कृषि वानिकी पद्धतियाँ वहां के सामाजिक एवं अर्थिक विकास में अपना योगदान दे रही हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक एवं अर्थिक मूल्यांकन से इस बात की भी जानकारी मिलती हैं कि वहां के विभिन्न सामाजिक–अर्थिक पहलुओं का कृषि वानिकी प्रबन्धन से परस्पर किस प्रकार का (धनात्मक अथवा ऋणात्मक) सम्बन्ध हैं तथा कृषि वानिकी के द्वारा किस प्रकार से कृषकों के सामाजिक एवं अर्थिक स्तर का सुधार किया जा सकता हैं।

सामाजिक एवं अर्थिक मूल्यांकन के लिए सम्बन्धित जानकारी एवं आंकड़े उपलब्ध कराने में प्रश्नावली आधारित विस्तरित (आवासीय एवं फील्ड) सर्वे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सर्वेक्षण के उद्येश्य पूरा करने के लिये प्रश्नावली जिनमें विभिन्न कारकों एवं कृषि वानिकी पद्धतियों से सम्बन्धित प्रश्न सग्रहित होते हैं। साक्षात्कार कर उसका अवलोकन किया जाता हैं।

जब प्रश्नावली आधारित विस्तरित सर्वे माध्यम का उपयोग प्रमुख कृषि पद्धतियों एवं कृषि वानिकी पद्धतियों के आर्थिक

ढालुवाला, मजबता (हरिद्वार) में कृषि वानिकी पर सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण

एवं सामाजिक प्रभाव जानने के लिए किया जाता हैं, तो विभिन्न प्रकार के परिर्वतनशील कारकों का मूल्यांकन किया जाता हैं। इन कारकों को प्रमुखतः तीन श्रेणी में विभाजित किया जा सकता हैं।

1. व्यक्तिगत
2. सामाजिक, एवं
3. आर्थिक

1. व्यक्तिगत स्थिति मूल्यांकन के अर्न्तगत किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्थिति का आंकलन करने के लिए विभिन्न व्यक्तिगत कारकों का अध्ययन किया जाता हैं जो कि मुख्यतः अग्रलिखित हैं :– उम्र, लिंग, वैवाहिक स्तर, पारिवारिक अवस्था, शिक्षा, व्यवसाय, कृषि वानिकी का तकनीकी ज्ञान, कृषि वानिकी का कुल अनुभव, निर्णय क्षमता, कृषि एवं वृक्ष प्रजातियों के प्रति व्यक्ति विशेष का रूझान, कृषि वानिकी को अपनाने के लिए अथवा अपनाते हुए उस व्यक्ति के समक्ष उत्पन्न विभिन्न प्रकार के अवरोध इत्यादि।

2. सामाजिक स्थिति मूल्यांकन में कृषि वानिकी एवं किसानों का प्रभाव जानने के लिए उन सामाजिक कारकों

का जो कृषि वानिकी का प्रबन्धन प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। उनका आंकलन किया जाता हैं। प्रमुख सामाजिक कारक इस प्रकार से हैं :– सामाजिक सांस्कृतिक दशा, सामाजिक तौर पर मजदूरी की उपलब्धता, तकनीकी ज्ञान, स्रोतों की उपलब्धता, कृषि वानिकी से सम्बन्धित कानून एवं नीतिगत मुद्दे, बाजार उपल्ब्धता, कृषिकार्य सहयोग इत्यादि।

3. आर्थिक स्थिति मूल्यांकन के लिए व्यक्ति/समूह की अर्थिक स्थिति की जानकारी अग्रलिखित कारकों से प्राप्त की जा सकती हैं जैसे कि कुल कृषि योग्य भूमि, कृषि वानिकी उत्पाद मूल्य, प्रति इकाई उत्पादन, मजदूरी दर, कुल मासिक/वार्षिक आय, कृषि से होने वाली आय इत्यादि।

सामाजिक–आर्थिक परिस्थतियों/कारकों के मूल्यांकन की प्रचलित विधियां

काई–वर्ग (λ square) परीक्षण काई–वर्ग परिक्षण, सामाजिक–आर्थिक पहलुओं के अध्ययन के लिए तब किया जाता हैं, जब इससे सम्बन्धित कारकों के लिए कोई भी परिकल्पना सत्य न हों। तथा जब सभी कारकों का मूल्य विशेषता आधारित हों एवं जब पंजित/लिखित सूचना चर रूप में हो, वर्तमान में इस विधि का प्रयोग मुख्यतः सामाजिक एवं आर्थिक कारकों के सांख्यिकी मूल्यांकन में किया जाता हैं। काई–वर्ग परीक्षण यह भी सुनिश्चित करता हैं कि व्याख्यातकम सामाजिक–आर्थिक कारक किसी विशेष कृषि वानिकी पद्धति/पद्धतियों के अभिग्रहण को अर्थपूर्वक प्रभावित करते हैं अथवा नहीं। सामान्यतः काई–वर्ग स्वतंन्त्रता परीक्षण एल्फा 5 प्रतिशत महत्ता स्तर पर किया जाता हैं।

लॉजिट विश्लेषणः– लॉजिट विश्लेषण किसी भी समूह विशेष के उत्तर दाताओं में सामाजिक एवं आर्थिक विशेषताओं के अन्वेषण के लिए किया जाता हैं। सांख्यिकी विश्लेषण में इस प्रकार के अध्ययन के लिए लाजिट संरचना या लाजिट कार्य के द्वारा किया जाता हैं जब कारक द्विचर–आश्रित परिवर्तनशील हो। ये प्रभावों–दुष्प्रभावों के व्याख्यान में भी उपयोगी विधि हैं जिसमें अतिरिक्त लाजिट विश्लेषण के द्वारा इन तथ्यों की भी जानकारी ज्ञात की जा सकती हैं कि कोई विशेष कृषि वानिकी पद्वति किन्ही विशेष परिस्थितियों में कितनी असफल होगी। संक्षेप में लॉजिट विश्लेषण से उन कारकों का पता लगाया जा सकता हैं जो किसी व्यक्ति विशेष को कृषिवानिकी अपनाने को प्रोत्साहित करते हों।

सामाजिक आर्थिक अध्ययन के उद्देश्य से वर्ष 2017 में ग्राम डालूवाला मजबता जनपद हरिद्वार में भूमि वितरण एवं व्यवसाय स्वरूप एवं वर्गीकरण पर केन्द्रित एक प्रश्नावली आधारित विस्तृत सर्वेक्षण किया गया था। परिणाम अग्रलिखित हैः–

सारणी 1. अध्ययन क्षेत्र (डालूवाला मजबता, जिला–हरिद्वार) में कृषकों के मध्य भूमि वितरण

भूमि श्रेणी	कृषि वानिकी कृषक (%)	गैर–कृषि वानिकी कृषक (%)	कुल (%)
भूमिहीन	0.0	50.00	50.00
लघु	25.33	6.33	31.66
मध्यम	13.33	3.33	16.66
बृहत्	1.34	0.34	1.68

कुल 600 किसानों द्वारा प्रतिवादित डाटा का आंकलन किया गया परिणाम (सारणी 1) में स्पष्ट तौर पर परिलक्षित होता है कि कुल संकलित डाटा (600 किसान) में 50 प्रतिशत भूमिहीन व 50 प्रतिशत भूमिहर किसानों के आधार पर कुल 50 प्रतिशत में से 40 प्रतिशत किसान कृषि वानिकी तथा 10 प्रतिशत गैर–कृषि वानिकी अपनाते हैं जिसमें लघु श्रेणी में कुल 31.66 प्रतिशत किसान थे। इसमें कृषि वानिकी किसानों का प्रतिशत 25.33 एवं गैर कृषि वानिकी किसानों का 6.33 प्रतिशत था जो कि कृषि वानिकी किसानों की अपेक्षा अत्यंत कम था। इसी प्रकार मध्यम श्रेणी में कुल 16.

66 प्रतिशत भूमिहर किसान थे जिसमें कृषि वानिकी किसान 13.33 प्रतिशत एवं गैर कृषि वानिकी किसान 3.33 प्रतिशत थे। बृहत् श्रेणी के भूमिहर किसानों का प्रतिशत केवल 1.68 प्रतिशत पाया गया। जिसमें 1.34 प्रतिशत कृषि वानिकी को अपनाने वाले एवं 0.34 प्रतिशत गैर कृषि वानिकी कृषक थे। इस प्रकार बृहत श्रेणी में बड़े खेतों की अत्यंत कम उपलब्धता के कारण इस श्रेणी में भी कृषि वानिकी एवं गैर–कृषि वानिकी कृषकों के मध्य बहुत अन्तर नहीं मिला।

उपरोक्त परिणाम अध्ययन क्षेत्र में (डालूवाला मजबता, जिला–हरिद्वार) भूमिहर किसानों के मध्य कृषि वानिकी पद्धति क्षेत्र में कृषि वानिकी की लोकप्रियता इंगित करते हैं। इसका स्पष्ट रूप से उदाहरण उपरोक्त आंकलन में मिलता हैं जिसमें सभी श्रेणी (भूमिहीन, लघु, मध्यम एवं बृहत्) के कृषि वानिकी कृषकों का प्रतिशत गैर–कृषि वानिकी कृषकों के प्रतिशत से ज्यादा रहा। क्योंकि सर्वाधिक भूमिहर किसान लघु श्रेणी में रिकार्ड किए गये। जिनमें गैर–कृषि वानिकी कृषकों का प्रतिशत कम था यहां यह परिणाम यह प्रस्ताव देता हैं कि भविष्य में कृषि वानिकी से संबंधित योजनाएं इस श्रेणी के कृषकों को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए परिलक्षित की जायें।

सारणी 2 में अध्ययन क्षेत्र में कृषकों का व्यवसायी स्तर पर आर्थिक आंकलन किया गया। कुल उत्तरदाताओं को विभिन्न व्यवसायिक श्रेणियों में (रोजगार प्रकार, कुशल, अर्धकुशल, अकुशल, एवं अन्य) तथा उपश्रेणियों (सरकारी, निजी, बढ़ाई, लौहार, मजदूर, अन्य) में वर्गीकृत किया गया। परिणाम (सारणी 2) में दर्शाया गया हैं कि कुल कृषकों में सर्वाधिक निजी रोजगार (61.10 प्रतिशत) तथा अकुशल श्रमिक (मजदूर, 29.92 प्रतिशत) रहे। ये श्रमिक अध्ययन क्षेत्र में कृषि वानिकी द्वारा स्थानीय मजदूरी करने का एक प्रमुख स्रोत होता हैं जो विभिन्न प्रकार के कृषि वानिकी पद्धति एवं उनकी संचालन जैसे कि वृक्षों कि कटाई–छटाई, उत्पादन, वृक्ष एवं फसल प्रबन्धन इत्यादि के जरिए अपनी आर्थिकी सुनिश्चित करते हैं।

सारणी 2. अध्ययन क्षेत्र (डालूवाला मजबता, जिला–हरिद्वार) में कृषकों का आर्थिक मूल्यांकन (व्यवसायिक स्वरूप एवं वर्गीकरण)

व्यावसायिक स्वरूप		कृषि वानिकी कृषक (%)			गैर कृषि वानिकी कृषक (%)	कुल
		लघु	मध्यम	बृहत्	भूमिहीन	
रोजगार प्रकार	सरकारी	0.41	0.41	0.61	1.63	3.06
	निजी	24.44	15.27	1.02	20.37	61.10
कुशल	बढ़ई	0	0	0	0.41	0.41
	लौहार	0	0	0	0.41	0.41
अर्धकुशल	दुकानदार	0.61	0.41	0	1.02	2.04
अकुशल	मजदूर	2.85	0	0	27.07	29.92
अन्य		0.41	0	0	2.04	2.45

इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र में कृषि वानिकी श्रमिक वर्ग के लिए धनोपार्जन का उपलब्ध माध्यम हैं। निजी व्यवसाय वाले कृषक लगभग सभी भूमि श्रेणियों में अधिकतम प्रतिशत (कुल 24.44, 15.27 एवं 1.02 प्रतिशत) में मिले। इसी प्रकार वे सभी किसान निजी व्यवसाय को अपनाते भी मिले जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तौर पर कृषि वानिकी को अपनाते हैं इस श्रेणी के किसानों के लिए कृषि वानिकी मुख्य अथवा अतिरिक्त आय का स्रोत हैं इन श्रेणियों के अतिरिक्त दुकानदार (0.6 प्रतिशत), एवं अन्य जैसे कि दुग्ध व्यवसाय, मुर्गी पालक (0.41 प्रतिशत) भी कृषि वानिकी के जरिए अपनी आय को संवारते हैं। कृषि वानिकी इस प्रकार सभी भूमि श्रेणी एवं आय वर्ग के किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सुनिश्चित करती हैं।

संक्षेप में कृषि वानिकी में सामाजिक आर्थिक अध्ययन, पद्धति एवं विषय वस्तु; दोनों के मामले में एक विस्तृत अध्ययन हैं जिसका केन्द्र पारम्परिक रूप से कृषकों/कृषक समूहों के सामाजिक–आर्थिक स्तर एवं उसका पारस्परिक

विन्यास है जिसे गुणात्मक एवं मात्रक; दोनों प्रकार का शोध तकनीक एवं आंकड़ों के द्वारा विस्तृत रूप से समझा जा सकता हैं। सम्बन्धित आंकड़े प्राप्त करने के लिए विस्तृत सामाजिक–आर्थिक सर्वेक्षण किये जाते हैं, जिसका प्रमुख उद्देश्य किसी स्थान विशेष के निवासियों/कृषकों के जीवन में सामाजिक एवं आर्थिक स्तर की जानकारी एकत्र करना होता है। इनके अतिरिक्त उस स्थान में अपनाई गई कृषि वानिकी पद्धतियों के बारे में भी आंकड़े एकत्र किये जाते हैं: दोनों प्रकार की जानकारी के मध्य सांख्यिंक विश्लेषण कर यह जाना जाता है कि किस प्रकार से दोनों परस्पर अर्थपूर्वक सम्बन्धित हैं या नहीं। इस प्रकार का अध्ययन भविष्य में कृषि वानिकी से सम्बन्धित नीति निर्माण में निश्चित रूप से लाभकारी होगा।

रामबीर सिंह
वैज्ञानिक–डी

हमारे लघु प्रयास–पर्यावरण के आसपास

शिव सत्या प्रसाद और पंकज सिंह, वैज्ञानिक–बी – वन जैवविविधता संस्थान, दुल्लापल्ली, हैदराबाद

आदिकाल से ही पर्यावरण हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है। मानव ने अपने अनुसंधान और विकास से जल, थल और नभ के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त की हैं जिनमें कृषि, वनों और वनोत्पाद, जल और प्राणदायिनी वायु प्रमुख हैं। एक शांतिपूर्ण और स्वस्थ जीवन जीने के लिए एक स्वच्छ एवं सुंदर वातावरण बहुत जरूरी है। पर्यावरण एक प्राकृतिक परिवेश है जो जीवन को इस धरती पर बढ़ने और पोषण देने में सहायता प्रदान करता है। मानव जीवन में पर्यावरण के महत्व को हम नकार नहीं सकते हैं किन्तु वर्तमान समय में पर्यावरण का दिन प्रतिदिन हवास होता जा रहा है। आज का भौतिकवाद युग न केवल हमारे लिए घातक है वरन आने वाली पीढ़ी के लिए संकट की स्थिति उत्पन्न कर रहा है। विगत कुछ वर्षों में सरकारी, गैरसरकारी और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने प्रकृति के महत्व को समझने और समझाने का अथक प्रयास किया है जो पर्यावरण की सुरक्षा में महत्वपूर्ण कदम साबित हो रहा हैं। इतना ही नहीं पर्यावरण संरक्षण किसी एक संस्था या संगठन की ज़िम्मेदारी नहीं है अपितु यह एक सम्मिलित सामाजिक प्रयास है जो मानव जीवन के लिए अति आवश्यक है। अतः हम अपने छोटे–छोटे प्रयासों से पर्यावरण और उसके विभिन्न स्रोतों के संरक्षण में अपनी महती भूमिका निभा सकते हैं।

पर्यावरण की सुरक्षा के लिए सरल उपाय कुछ इस प्रकार किए जा सकते है।

(i) कम ऊर्जा खपत वाले उपकरणों का इस्तेमाल करें:

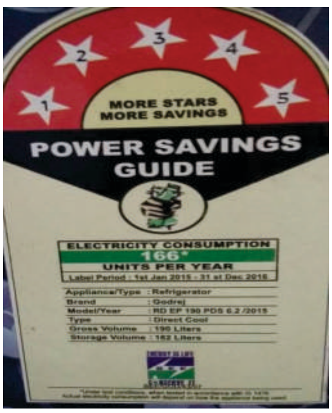

बल्ब, पंखे, कूलर, फ्रिज, ए.सी. आदि हमारी रोज़मर्राह के इस्तेमाल में आने वाली वस्तुएँ हैं। कम ऊर्जा खपत करने वाले उपकरणों जैसे एलईडी बल्ब, पाँच सितारे वाले कूलर, फ्रिज, ए.सी. आदि का उपयोग केवल हमें अपने बिजली के बिल अपितु अपरोक्ष रूप से वातावरण को होने वाले दुष्प्रभाव को भी कम कर सकते हैं। इसी क्रम में पृथ्वी के प्रति हमारी प्रतिबद्धता दर्शाने के लिए हर वर्ष मार्च में अर्थ अवर (Earth Hour) मनाया जाता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति, समाज और व्यापार में एक घंटे के लिए अनावश्यक विघुत बल्ब को रात्रि में बंद किया जाता है। इस प्रसंग की शुरुआत ऑस्ट्रेलिया में 2007 में हुई थी जो अब कई देशों में मनाया जाता है। अर्थ अवर को वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर (F for Nature) द्वारा मनाया जाता है। इस साल का अर्थ अवर 30 मार्च 2019 को 8:30 से 9:30 रात्रि के मध्य मनाया गया। यह दर्शाता है कि हमें केवल आवश्यकता होने पर ही विघुत या ऊर्जा का इस्तेमाल करने चाहिए।

वर्षा जल का भूमि में संचयन करें:

प्रायः यह देखने और सुनने को मिलता है कि भूमि का जल स्तर बहुत गिर गया है। इसका एक कारण हमारे वनों का घटना, वर्षा जल का संचय न हो पाना और साथ ही भूमि जल की बोरिंग करना है। जिससे शहरों और गाँवों में ग्रीष्मकाल में भूमि जल की स्थिति और भयावह होती जा रही है। जैसा विदित है कि पृथ्वी पर केवल 3% पीने योग्य जल प्रकृति में है। लगभग 2/3 जल ग्लेसियर और पोलर में जमा हुआ है। ज़्यादातर जल भूमिगत है और केवल 0.3% ही सतही जल है जिसमें से 7/8 झीलों में और बाकी नदी में मौजूद है। इस क्रम में मानव को शिक्षित करने और उसके परिणाम और उपाय से अवगत कराने की जरूरत है जैसे वर्षा जल

का संरक्षण करना, भूमि से अधिक मात्रा में जल का दोहन न करना, पीने के पानी को बर्बाद नहीं करना, खुले नल को बंद करना एवं भूमि के जल स्तर को बढ़ाने की कोशिश करना, जल प्रदूषण को रोकना जैसे चित्र–1 में दर्शाया गया आदि प्रमुख हैं। जल और वृक्ष दोनों ही एक दूसरे के पूरक है क्योंकि यदि जंगल नहीं होंगे तो पेड़ भूमिगत जल संचयन नहीं कर पाएंगे जिससे स्थानीय जलवायु में परिवर्तन आएगा। अतः इस ओर हमें अपने आस पास ध्यान देने की जरूरत है।

3. साझा चलना पुर्नचक्रण करना:

आजकल चार पहिया और दो पहिया वाहनों की भरमार हो गई है जहां देखों वहीं पर जाम की स्थिति रहती है। इस स्थिति में गाड़ियों से निकलने वाले धुआँ वायु प्रदूषण के सबसे बड़े कारणों में से एक है। हम अपनी छोटी सी कोशिश से प्रदूषण को कम करने में अपनी महती भूमिका निभा सकते हैं जैसे अपनी कार का उपयोग जहां तक हो कम करें, कार को साझा करना, छोटी दूरी के लिए पैदल जाना, सिग्नल पर इंजन बंद करना जो सेहत की दृष्टि से भी लाभप्रद है। ये छोटे प्रयास पर्यावरण को शुद्ध रखने में मददगार साबित हो सकते हैं।

वायु प्रदूषण को रोकने के उपायः –

1. अधिक पेड़ लगाना
2. स्वच्छ और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों जैसे सीएनजी (CNG) और जैव ईंधन का उपयोग
3. जीवाश्म ईंधन का उपयोग कम करना
4. ऑटोमोबाइल में उत्प्रेरक रूपांतरण का उपयोग

जल प्रदूषण को रोकने के उपायः –

1. पानी का शोधन एवं उचित उपयोग
2. रसोई का कचरा जल उद्यान और अन्य घरेलू उद्देश्यों का उपयोग करना

शोर प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपायः –

1. दिवाली पर पटाखे जलाने से बचें
2. वाहनों का उचित रखरखाव

ठोस अपशिष्ट उत्पादन में कमी के उपायः –

1. कचरे का पृथक्करण
2. प्लास्टिक और कागज का पुर्नचक्रण और पुनः उपयोग
3. बायोडिग्रेडेबल रसोई का कचरा कम्पोस्टिंग करना
4. प्लास्टिक के उपयोग को कम करना

इन प्रयासों के अलावा जनमानस को पर्यावरण के बारें में जागरूक और उनका जुड़ाव भी महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में सरकार द्वारा जागरूकता कार्यक्रम समय–समय पर कराए जाते हैं। इस क्रम में 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है। पिछले कुछ समय में विश्व पर्यावरण दिवस का विषय जैसे ''जनमानस का प्रकृति से जुड़ाव–2017'' एवं ''बीट प्लास्टिक प्रदूषण–2018'' था और वर्ष 2019 का विषय ''वायु प्रदूषण'' है जोकि प्रकृति के संरक्षण और उसके महत्व को जनमानस के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण प्रयास है। इस विषय पर गहनता से विचार करने की जरूरत है और हम अपने छोटे से प्रयासों से अपनी जीवनदायिनी प्रकृति को स्वछ और सुंदर रूप में संरक्षित रख सकते है क्योंकिः–

''प्रकृतिः रक्षित रक्षिता''
Nature protects if she is protected
(पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार का उद्देश्य)

. . .

शिव सत्या प्रसाद

तितलियों का महत्व, पर्यावरण में उनकी भूमिका एवम् तितलियों का पर्यावरणीय समावेशीय पर्यटन की अवधारणा

डॉ0 अरूण प्रताप सिंह, वैज्ञानिक–एफ, वन संरक्षण प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

तितलियाँ जैव विविधता के महत्वपूर्ण घटक हैं और पारिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे वन पारिस्थितिकी तंत्र के खाद्‌य श्रृंखला में भूमिका निभाते हैं। उनके अंडे, लार्वा (कैटरपिलर) और वयस्क (तितली) कई अन्य जानवरों के भोजन का निर्माण करते हैं। अधिकांश तितलियाँ पौधों के फूलों की परागणकर्ता हैं और इनका पौधों की विविधता के साथ एक सहजीवी संबंध हैं क्योंकि ये लार्वा भोजन के लिए विभिन्न प्रकार के पौधों पर निर्भर हैं। दिनचर और खास तौर पर आकर्षक होने के नाते, इन्हें दिन के दौरान आसानी से उड़ते हुए देखा जा सकता है। वे अन्य अकशेरूष्ठों कीटों (इनवर्टीब्रेट) की तुलना में आसानी से पहचाने जाने योग्य समूह हैं, जिन्हें विस्तार से वर्णित अधिकांश प्रजातियों के साथ व्यापक रूप से अध्ययन किया गया है। इनकी पीढ़ियाँ छोटी, व्यापक और सभी प्रकार के निवास स्थान में पायी जाती हैं। ये सभी गुण तितलियों को पर्यावरणीय बदलाव और गुणवत्ता के अच्छे जैविक संकेतक बनाते हैं। तितलियों का सौंदर्य मनुष्य को अत्यधिक आकर्षित करता है। उनके आकार, रंग और पैटर्न ने हमेशा मनुष्य को मन मोहित किया है और कला, साहित्य व उत्सव में इनका वर्णन किया जाता है। ये सुंदर और रंगीन जीव फूल से फूल तक उड़ते हैं। ये काटते या डंक नहीं मारते हैं, क्योंकि उनके मुंह के भाग ट्यूब के रूप में बदले हुए है। जो केवल रस चुसने के काम आते हैं इसलिए उन्हें मासूमियत के प्रतीकों के रूप में जाना जाता है। इनका संरक्षण करने के लिए इनके प्राकृतिक वातावरण की रक्षा करना बहुत आवश्यक है जो इन्हें जीवित रहने में सहयोग करते हैं। इसे हासिल करने के लिए एक संरक्षित नेटवर्क क्षेत्र बनाने की आवश्यकता है। हालांकि तितलियों के संबंध में सामान्य रूप से जागरूकता के रूप में और प्राकृतिक पारिस्थितिकी प्रणालियों में उनकी भूमिका पर्यावरण परिवर्तन के संकेतकों के रूप में पशुओं के अन्य समूहों की तुलना में बहुत कम है, इसलिए इस पर वैज्ञानिक अनुसंधान की आवश्यकता है और लोगों को उनके पारिस्थितिक मूल्य को ठीक से समझने के लिए शिक्षित करना आवश्यक है। तितली उद्‌यान, घरों और ट्रेल्स को दुनिया भर में अपनाया गया है लेकिन भारत में इसको प्रमुखता से अब तक नहीं अपनाया गया हैं। हाल ही में उष्णकटिबंधीय क्षेत्र के कई देशों में शिक्षा, मनोरंजन, राजस्व और शोध की कमाई के रूप में पर्यावरणीय पर्यटन को बहुत महत्व दिया गया हैं। जैसे कि मलेशिया, इंडोनेशिया, पापुआ न्यू गिनी, थाईलैंड, आदि देशों में तितलियों पर बहुत काम हो रहा है। भारत के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र, पश्चिमी घाट, हिमालयी क्षेत्र और अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह में तितलियों पर आधारित पर्यावरणीय पर्यटन को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

डॉ0 अरूण प्रताप सिंह
वैज्ञानिक–एफ

शहरी जंगलों से जुड़ी समस्याएँ, कारण व उपाय

कविता भंबानी शर्मा, क्षेत्र सहायक एवं अमित पाण्डेय, वैज्ञानिक–जी
वन व्याधि शाखा, वन संरक्षण प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

शहरी विकास की गति में अभूतपूर्व वृद्धि ने वृक्षों के साथ मनुष्यों के संबंधों को विशेष रूप से प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप शहरी वन इन दोनों के बीच संबंध स्थापित करने के एक मात्र साधन बन गए हैं। शहरी वनों को मानव बस्तियों में और उनके आस–पास की सभी वनस्पतियों जैसे सड़क के किनारे लगे वृक्ष, पार्क आदि के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है। शहरी लोगों को इन वृक्षों से बहुत सारे सामाजिक व पर्यावरणीय लाभ तो मिलते हैं किन्तु शहर के तनावपूर्ण वातावरण में पेड़ों को काफी समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। शहरी जंगलों में सबसे महत्वपूर्ण समस्या वृक्षों की जड़ों के विकास के लिए उपयुक्त स्थान की कमी है जिसके रहते उन्हें पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाता, साथ ही मिट्टी की गुणवत्ता, प्रकाश की कमी या अधिकता, प्रदूषण, पेड़ों को यांत्रिक व रासायनिक क्षति आदि, उनके सामान्य विकास में बाधक बनते है। इन सभी समस्याओं से निपटने के लिए तथा शहरी वनों को अधिक स्वस्थ बनाने के लिए सबसे पहले उनकी पूरी जानकारी होना आवश्यक है ताकि सही दिशा में काम कर, शहरी जंगलों को विकसित किया जा सके।

शहरी परिवेश को सुशोभित करने तथा पर्यावरण को स्वच्छ करने में शहरी जंगलों का बहुत बड़ा योगदान होता है और इसे बनाए रखने के लिए वृक्षों का स्वस्थ रूप से बने रहना अनिवार्य है। लेकिन तनावपूर्ण परिस्थितियों के कारण शहरी पेड़ों को निम्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

1. टोपिंग या अन्य छटाई
2. पेड़ों से सटे बिजली के तार
3. टूटी हुई या आंशिक रूप से जुड़ी शाखाएँ
4. पेड़ों के तने या शाखा में खुली गुहा
5. मृत शाखाएँ
6. तने पर एक बिन्दु से उत्पन्न अनेक शाखाएँ
7. पुराने घावों में उपस्थित सड़न
8. मिट्टी के स्तर में परिवर्तन

निर्माण कार्य जैसे सड़क व दीवारों का निर्माण, केबल बिछाना या नालियों के लिए चिंग करना आदि आमतौर पर पेड़ों को क्षति पहुँचाते हैं और पेड़ के विभिन्न भागों में घावों का कारण बनते हैं जैसे कि–

पेड़ों के जड़ क्षेत्र में निर्माण, बिजली की तारें एवं खुली गुहा

1. तने के घाव: निर्माण कार्यो में उपयोग होने वाले उपकरण और वाहन पेड़ों से टकरा जाते हैं जिससे छाल व तने पर घाव हो जाते है। कभी–कभी पेड़ों को औज़ार रखने, केबल बांधने आदि के लिए भी उपयोग में लाया जाता है। घास काटने के समय भी अक्सर पेड़ों को घाव हो जाते है जो बाद मे संक्रमण का कारण बनते हैं और पेड़ों को कमजोर बनाते है।

2. जड़ों के घाव: संरक्षित रूट ज़ोन में चिंग व जल निकासी के लिए उत्खनन, पेड़ की जड़ों को नुकसान पहुंचाता है और उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता को कम कर देता है जिसके कारण जड़–सड़न कवक आसानी से पेड़ को संक्रमित कर देती है।

जड़ क्षेत्र में मिट्टी भराव तथा सीमेंटिड फुटपाथ

3. भराव अथवा

माउंडिंग निर्माण कार्यों के बाद मिट्टी के भराव को ज़मीन के ऊपर छोड़ दिया जाता है, जो पेड़ों की जड़ों पर एकत्र हो कर जड़ों मे घुटन पैदा करती है।

इसके अतिरिक्त तेज हवाओं और तूफान के बाद टूटी शाखाएँ, चीड़ के पेड़ों पर चिंगारी के घाव आदि, अनेक रोग जनकों जैसे हार्ट रोट कवक, कीट और भृंगों को आकर्षित करते हैं व पेड़ों को बीमार कर धीरे– धीरे खोखला कर देते हैं।

शहरी पेड़ों में होने वाली समस्याओं के कारण सामान्यतः निम्नलिखित बीमारियां देखने को मिलती हैं:

1. कैंकरः वृक्ष के किसी भी भाग में पाया जाने वाला वो हिस्सा जहां छाल या कैम्बिउम मृत हो, कैंकर कहलाता है। पेड़ के रोगग्रस्त होने का महत्वपूर्ण कारण कैंकर हो सकता है क्योंकि कैंकर के स्थान पर पेड़ को मजबूती देने के लिए पर्याप्त लकड़ी नहीं होती। कैंकर एक प्रकार के कवक से होने वाला रोग है जो लंबे समय तक कवक की वृक्ष में सक्रियता के कारण होता है। 40 से अधिक वृक्ष की परिधि का प्रभावित होना पेड़ की विफलता निश्चित करता है।

2. एपिकोर्मिक शाखाएँः इस तरह की शाखाएँ वृक्षों पर विभिन्न कारणों से हुए घावों अथवा तनाव की प्रतिक्रिया का परिणाम होती है। इन शाखाओं का पेड़ के साथ जुड़ाव कमजोर होता है जो समस्या का कारण बनता हैं।

3. वीक ब्रांच यूनियनः सामान्यतः किसी वृक्ष की दो शाखाएँ बढ़ते हुए अपनी अलग–अलग छाल का निर्माण करती हैं किन्तु शहरी वृक्षों में तनाव के कारण कई जगहों पर शाखाओं के मध्य छाल का निर्माण नहीं हो पाता और कमजोर जोड़ के रहते तेज़ हवाओं तथा तूफ़ान के समय टूट कर अन्य समस्याओं को जन्म देती हैं।

4. पत्तियों का पीला पड़नाः पोषक तत्वों की कमी और वायु प्रदूषण इसका एक कारण माना जा सकता हैं। सूक्ष्म जीवों द्वारा संक्रमण भी पत्तियों के पीलेपन का एक कारण है।

5. डाइ–बैक : भारी जड़–तनाव के कारण ऊपरी शाखाओं को पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाता और शाखाएँ मरना शुरू हो जाती हैं। वृक्ष के शीर्ष पर पत्तियाँ रहित शाखाएँ किसी बारहसिंघा के सिर की भांति प्रतीत होती हैं इसलिए इसे स्टैग हैड लक्षण भी कहा जाता है, जो प्राय जड़ों में हुए तनाव को दर्शाता है। इस तनाव का कारण रूट रोट कवक, पेड़ के जड़ क्षेत्र में निर्माण के कारण ऑक्सीजन व पानी का प्रवाह कम हो जाना, ट्रेंचिंग से जड़ों को क्षति आदि हो सकते हैं।

6. मिट्टी संघननः यह कारक पेड़ों के लिए सबसे अधिक हानिकारक कारकों में से एक है क्योंकि ये जड़ विकास व ऑक्सीजन प्रवाह के लिए एक भौतिक बाधा के रूप में कार्य करके जड़ विकास को रोकता है।

7. ट्यूमरः किसी वृक्ष में ट्यूमर का विकास बैक्टीरिया व कवक संक्रमण के कारण हो सकता है। ट्यूमर वृक्ष के ऊपरी भाग का वज़न बढ़ा देता है जिससे तेज़ हवाओं के दौरान उसके टूटने का खतरा बढ़ जाता है।

समाधानः

हालांकि शहरी वातावरण में इन सभी समस्याओं को पूरी तरह से दूर नहीं किया जा सकता, किन्तु निम्नलिखित उपायों को प्रयोग में ला कर इन्हें कम ज़रूर किया जा सकता है।

1. तने व शाखाओं पर लगे घावों को ड्रेससिंग के बाद उचित छ्टाई की जानी चाहिए। रूट समस्याओं तथा तनाव से प्रभावित वृक्षों के लिए कनोपी कटिंग भी उचित उपाय है।

2. पेड़ों की संख्या और नामकरण के लिए ब्लेजिंग की बजाय स्टील की छोटी कीलों का उपयोग किया जाना चाहिए।

3. गुहा अथवा कैविटी उपचार के लिए पहले से सड़ चुकी लकड़ी को हटाकर ट्रिडेमीफोम जैसे कवक नाशको के साथ

सतह पर लगाने के पश्चात् पोल्युरेथेन फोम जैसी निष्क्रिय सामग्री से भरा जाना चाहिए।

4. पेड़ों पर उगने वाले एपिफाइट्स जैसे फाइकस, लोरेंथस आदि को समय रहते हटाया जाना चाहिए ताकि बड़े होकर वे मुख्य पेड़ को नुकसान नहीं पहुंचा सकें।

5. तूफान या बारिश के मौसम से पहले मृत और सड़ने वाली शाखाओं को हटा देना चाहिए।

6. पेड़ों से कवकों की फ्रूटिंग बोडीज़ को निकालें तथा उन्हें जला दें ताकि पड़ोसी पेड़ों मे संक्रमण न फैले।

7. पेड़ों के संरक्षित रूट जोन में निर्माण के लिए सीमेंट या कंक्रीट के स्थान पर संरचित मिट्टी जो की क्रश्ड स्टोन, क्ले लोम और हाइड्रो जैल का मिश्रण होती है, का उपयोग किया जाना चाहिए। ताकि जड़ों में घुटन की समस्या को कम किया जा सके।

अतः शहरी क्षेत्रों मे वृक्षों की उपस्थिति का भरपूर लाभ उठाने के लिए समय–समय पर उनकी जांच तथा उपचार आवश्यक है। जिसके लिए प्रशासन के साथ साथ शहरी नागरिकों का सहयोग भी आवश्यक है।

कविता भंबानी शर्मा
क्षेत्र सहायक

कृषि वानिकी : कृषक का न्यूनतम निवेश एवं अधिकतम लाभ का स्रोत।

आलोक यादव, वैज्ञानिक–डी, अनीता तोमर, वैज्ञानिक–ई, अनुभा श्रीवास्तव, वैज्ञानिक–सी एवं राजकुमार, क्षेत्र सहायक, पारि–पुर्नस्थापन वन अनुसंधान केंद्र, प्रयागराज

प्राचीन काल से ही कृषि, भारतीय अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड है भारत की कुल जनसंख्या की लगभग आधी आबादी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। वर्तमान समय में यह मात्र भरण–पोषण का साधन ही नहीं अपितु महत्वपूर्ण व्यवसाय है। औद्योगिक क्षेत्र के लिए कृषि एवं वृक्ष का महत्व केवल कच्चे माल की आपूर्ति तक सीमित नहीं, बल्कि औद्योगिक क्षेत्र में लगे लोगों को खाद्यान्न एवं औद्योगिक उत्पाद हेतु बाजार भी उपलब्ध करता है। कृषि एवं वृक्ष का लम्बे समय से चले आ रहे सह–अस्तित्व के परिणाम स्वरूप ही एक नये क्षेत्र कृषि वानिकी का सृजन एवं विकास प्रारम्भ हुआ। शैशव अवस्था में कृषि वानिकी का लाभ भले ही परिलक्षित न हो, परंतु वर्तमान समय में कृषि वानिकी बहुआयामी हो चुकी है। जिसके फलस्वरूप कृषि वानिकी में ही कई शाखाओं का उदय हो चुका है। जो वर्तमान समय में किसान के लिए बहुपयोगी साबित हो रहा है तथा इसे व्यापक स्तर पर प्रचार एवं प्रसार करने की आवश्यकता है। वर्तमान समय में कृषि वानिकी के कुछ निम्नलिखित वैज्ञानिकी स्वरूप कृषकों द्वारा अपनाये जा रहे हैं।:

(1) कृषि बागवानी वानिकी पद्धति (2) पुष्प बागवानी कृषि एवं वानिकी । (3) सब्जी वानिकी । (4) मत्स्य पालन वानिकी। (5) चारागाह वानिकी ।

मानसून पर निर्भर कृषि/प्रधान, हमारे देश में लघु सीमांत जोत वाले कृषकों की संख्या अधिक है। जो कृषि को व्यवसाय का साधन नहीं अपितु भरण–पोषण का माध्यम मानता है। पूर्वाग्रह से ग्रसित किसान कृषि के साथ वृक्ष के सह–अस्तित्व को स्वीकार करने में डरता है। क्योंकि वह मानता है कि इससे उसकी कृषि जोत का आकार छोटा हो जाएगा। जिससे कृषि उत्पादन क्षमता प्रभावित होगी। कृषि कार्य में संलग्न अधिकतर कृषकों को कृषि वानिकी की विधिवत जानकारी का अभाव होता है जिसके कारण कृषि वानिकी की मूलभूत अवधारणाओं को पूर्ण न कर पाने से उन्हें लाभ कम एवं हानि ज्यादा उठाना पड़ती है। ऐसे में कृषक, कृषि वानिकी से दूरी बना लेता है। कृषि वानिकी एवं इससे संबंधित विषयों से उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाले अधिकतर युवा भी इसे मात्र एक विषय के रूप में देखते हैं। जो विद्यार्थी जीवन में इसमें गहरी रूचि दिखाते हैं परंतु शिक्षण के पश्चात् इसे सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाओं में इससे संबंधित पदों को पाने के साधन के रूप में ही देखते हैं।

उत्तर प्रदेश में प्रचलित कृषि वानिकी मॉडल

कृषि वानिकी की उपरोक्त समस्याएँ न तो जटिल हैं न ही दीर्घकालिक। इन समस्याओं का निदान निम्न प्रक्रियाओं को अपना कर कृषक एवं युवाओं की गलत धारणाएँ दूर करके किया जा सकता है। जैसे, कृषक को यह डर रहता है कि कृषि क्षेत्र में वृक्ष लगाने से उसकी जोत छोटी हो जाती है, यह आंशिक सत्य है परंतु इसका लाभ लम्बे समय के बाद दिखाई पड़ता है। इसके लिए उसे कृषि वानिकी के कुछ नियमों को अनुसरण करना पड़ेगा। जैसे–एक पौधे से दूसरे पौधे के बीच की दूरी इतनी पर्याप्त रखे कि जुताई यंत्र दो पौधों के बीच से आसानी से निकल सके। कृषक की एक समस्या यह है कि कृषि वानिकी में किन वृक्षों का चयन करना हैं। ज्यादातर कृषक फलदार वृक्षों एवं काष्ठीय पौधों को खेतों में लगानें को प्राथमिकता देते हैं। जबकि यह पूर्णतः सही नहीं, क्योंकि कृषि वानिकी में यही गलती कृषक के दीर्घ कालीन निवेश का न्यूनतम लाभ देती है और एक निवेशक (कृषक) को हतोत्साहित कर देती है। इसलिए कृषक को अपने क्षेत्र के मानसून अनुकूल उन्नत प्रजाति के सीधे तने, कम टहनियों एवं सीधे, गहरी जड़ों वाले वृक्ष का चयन करना चाहिए। उन्नत प्रजाति का वृक्ष तैयार होने में कम समय लेता है तथा व्यवसायिक रूप से अधिक मूल्य में बिकता है।

कृषि वानिकी के महत्व को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने कृषि वानिकी विधेयक 2014 को स्वीकृति दी, जिसका उद्देश्य वन क्षेत्र के कम होते दायरे को रोकना, पर्यावरण सुधार, भूमि में कार्बनिक की मात्रा में वृद्धि करना तथा वायुमण्डल में कार्बन–डाईआक्साइड की मात्रा को संतुलित अवस्था में लाना है। मृदा अपरदन पर नियंत्रण करना, खाद्यान्न आपूर्ति सुनिश्चित करना, लघु एवं मध्यम कुटीर उद्योग को बढ़ावा देना, रोजगार पलायन में कमी लाना, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी में सामंजस्य लाना, अनुपयोगी क्षेत्र को सुधार कर उर्वरता बढ़ाना, एवं उसे आर्थिक लाभ का साधन बनाना, आय एवं जीवन स्तर में सुधार करना है। वित्तीय, शैक्षिक एवं अनुसंधान संस्थानों को भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की जा रही है, जो कृषि वानिकी एवं इससे संबंधित विषयों पर कृषकों को सहयोग प्रदान कर रहे हैं। कृषि वानिकी के अंतर्गत जटिल वन क्षेत्र नियमों को सरल एवं स्पष्ट बनाया जा रहा है। जिससे कृषि वानिकी कर रहे कृषकों को अपने उत्पाद बेचने में किसी भी प्रकार की परेशानी का सामना न करना पड़े।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में कृषि वानिकी सहायक भूमि प्रबंधन प्रणाली के रूप में कृषक समुदाय के बीच में व्यापक रूप में स्वीकारी जा रही है। सरकार, उद्योग और गैर सरकारी संगठनों के प्रयास से पंजाब, हरियाणा एवं उत्तर–प्रदेश में कृषि वानिकी अच्छी तरह स्थापित हो गई है, पोपलर, यूकेलिप्टस व अन्य प्रजातियों के व्यावसायीकरण से कृषि वानिकी ने किसानों की आय एवं आजीविका में क्रांति ला दी है। इसलिए कृषि के साथ वृक्ष लगाना एक बेहतर भूमि उपयोग प्रबंध है जिससे कृषि समुदाय की आजीविका, उत्पादकता में वृद्धि एवं लाभ होता है।

इसके अतिरिक्त मृदा अपरदन, कार्बन उत्सर्जन, घटते वन क्षेत्रफल, अप्रत्याशित मानसून चक्र एवं अन्य पर्यावरणीय एवं परिस्थितिकीय विषमताएं जो समस्त जीवधारियों के लिए प्रतिकूल है, इन समस्त कारकों पर जलवायु परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए कृषि वानिकी एक टिकाऊ एवं कारगर पद्धति परिलक्षित हो रही है। अतः हर कृषक को कृषि वानिकी का प्रयोग अवश्य ही करना चाहिए। जिससे कि उसकी आमदनी में इजाफा एवं जोखिम में कमी तो आएगी ही, साथ ही साथ वो पर्यावरणीय विकास में भागीदार बनेगा।

. . .

आलोक यादव
वैज्ञानिक–डी

दीमकों के जैविक नियंत्रण में परभक्षियों की भूमिका

मनीष कनेरिया, शोध छात्र एवं डॉ. सुधीर सिंह, वैज्ञानिक–जी
वन कीट विज्ञान शाखा, वन संरक्षण प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

दीमक व्यापक रूप से विश्वभर में पायी जाती हैं जो कि विभिन्न कृषि एवं वानिकी फसलों, इमारती काष्ठों, पेड़ों से मिलने वाली वस्तुओं और लकड़ियों से बनी अन्य सरंचनाओं को हानि पहुँचाते हैं। प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्रों में दीमक की कुछ प्रजातियाँ जमीन के अंदर पेड़–पौधों के कार्बनिक पदार्थों का उपयोग अपने भोज्य पदार्थों रूप में करती हैं एवं कवक उद्यानों के रूप में वृद्धि करती हैं जिस कारण मिट्टी की उर्वरकता घट जाती है। दीमकों की सक्रियता के कारण फसलों की कटाई के बाद होने वाली हानि बहुत अधिक होती है। कवकों पर वृद्धि करने वाली सब–फैमिली *मैक्रोटरमिटिनी (टरमिटिडी)* के सदस्य जो कि जाति; *मैक्रोटर्मिस, ओडोन्टोटर्मिस, स्यूडाकेंथोटर्मिस, सिनकेंथोटर्मिस, माइक्रोटर्मिस, एनसिस्ट्रोटर्मिस* एवं *ऐलोडोन्टर्मिस* के साथ *माइक्रोसिरोटर्मिस* से संबंधित है और मुख्यतः दक्षिण अफ्रीका में अधिकांश कृषि फसलों एवं वन वृक्षों की लगभग 90 प्रतिशत मृत्युदर के लिए उत्तरदायी हैं। ब्राजील में यह पाया गया कि कोपटोटर्मिस टेस्टाशियस (*Coptotermes testaceus*) एवं अन्य प्रजातियाँ यूकेलिप्टस की अन्तःकाष्ठ को नष्ट करती हैं। दीमकों के कारण सीडलिंग/सेपलिंग पौधों की मृत्युदर 10.70% तक होती है। वैज्ञानिकों ने पाया कि दीमकों द्वारा *यूकेलिप्टस यूरोफायला* (*Eucalyptus urophylla*) में 0.65 मी3/हेक्टेयर एवं *यूकेलिप्टस केमेलडुलेन्सिस* (*Eucalyptus camaldulensis*) में 0.32 मी3/हेक्टेयर अन्तःकाष्ठ आयतन का घाटा होता है। सन् 2000 में मलेशियाई कीट–नियंत्रण उद्योग में कुल व्यवसाय के कारोबार का 50% मलेशिया में भूमिगत दीमकों के नियंत्रण में खपत हुआ, जिसके लिए 8–10 मिलियन अमेरिकी डॉलर खर्च हुआ जिसका लगभग 70% दीमक उपचार आवासीय परिसरों में 20% उद्योगिक भवनों और 10% वाणिज्य भवनों पर हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रतिवर्ष 1.5 बिलियन डॉलर राशि दीमकों के नियंत्रण पर खर्च होती है। इस समस्या के परिज्ञान में केवल एक यह सूक्ष्मता है कि उष्णकटिबंधीय और विकासशील देशों में जहाँ दीमक प्रचुरता और विस्तृतरूप से पाए जाते हैं फिर भी इनका कोई अनुमान उपलब्ध नहीं है।

भारत में दीमक द्वारा प्रमुख कृषि फसलों जैसे गेहूँ मक्का, गन्ना, कपास, मूँगफली, दालें और वन वृक्षारोपण पेड़ों जैसे *यूकेलिप्टस* (*Eucalyptus*), *सिल्वर ओक* (*Silver oak*), *कैशुराइना* (*Casuarina*), एवं विभिन्न प्रकार की काष्ठों से निर्मित भवन नष्ट हो जाते है। हमारे देश में कृषि फसलों में दीमकों के कारण होने वाली हानि कई लाख रूपए की होती है और लगभग 10–15% वन फसलों में हानि अनुमानित है। कुछ फसलों जैसे गेहूँ और गन्ना उत्तरी भारत में, मक्का, सूर्यमूखी और गन्ना दक्षिण भारत में, उत्तर–पूर्वी भारत में चाय और पश्चिम भारत में कपास की फसलों में दीमकों द्वारा बहुत अधिक हानि पहुँचती है। भारत में मिलने वाली दीमकों की 300 प्रजातियों में से 35 प्रजातियाँ ऐसी हैं जिनकी पहचान कृषि फसलों और लकड़ियों को हानि पहुँचाने के रूप में की गई है। दीमक की अधिकांश प्रजातियाँ मिट्टी के अंदर रहने वाली होती हैं जो मिट्टी के टीले के रूप में और जमीन के अंदर घर बनाती हैं। मिट्टी के टीले बनाने वाली प्रमुख प्रजातियाँ *ओडोन्टोटर्मिस ओवेसस* (*Odontotermes obesus*), *ओ. रेडेमन्नी* (*O. redemanni*) एवं *ओ. वेलोन्सिस* (*O. wallonensis*) हैं, एवं भूमिगत घर बनाने वाली प्रजातियों में मुख्यतः *हेटेरोटर्मिस इडिकोला* (*Heterotermes indicola*), *कॉप्टोटर्मिस सिलोंनीकस* (*Coptotermes ceylonicus*), *सी. हेमी* (*C.heimi*), *ओडोन्टोटर्मिस होर्नी* (*Odontotermes horni*), *माइक्रोटर्मिस ओबिस* (*Microtermes obese*), *ट्राइनरवाइटर्मिस बाइफॉर्मिस* (*Trinervitermes biformis*) एवं *माइक्रोटर्मिस बीसोनी* (*Microtermes beesoni*) है।

इन कीटों के नियंत्रण के लिए विभिन्न प्रकार की नियंत्रण विधियाँ विश्वभर में अपनायी जाती हैं। क्षेत्रों के लिए मुख्य रूप में रासायनिक उपचार आसानी से किए जा सकते हैं। सामान्य लोगों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए अधिक समय तक व्यापकता से फैलने वाले कारगर कीटनाशकों का उपयोग नहीं किया जाता हैं। अब विभिन्न प्रकार के अन्य उपचार जैसे– स्टेनलेसस्टील की जालियों का प्रयोग भवनों में एकीकृत कीट–नियंत्रण, काइटिन संश्लेषण को

रोकने वाले पदार्थों और जैविक नियंत्रण विधियों का उपयोग हो रहा हैं।

जैविक नियंत्रण का अर्थ परभक्षियों (Predators), परजीवियों (Parasitoids) और रोगजनकों (Pathogens) के द्वारा हानि पहुँचाने वाले कीटों की जनसंख्या को कम एवं उनका प्रबंधन करना होता है। दीमकों के परभक्षियों और परजीवियों के बारे में अभी तक अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है, इस प्रकार इनके द्वारा दीमकों का जैविक नियंत्रण करना शोध का एक अच्छा विषय है। कीटों पर लगने वाले कवकों को बेटिंग तकनीक (Baiting technique) के साथ उपयोग करना एक कारगर उपाय हो सकता है। दीमकों में सामाजिक और रासायनिक बचाव क्षमता अधिक होती है जो कि उनकी कॉलोनियों में बीमारी फैलने से रोकने में सहायक होती है। वर्तमान समय में *निमेटोड्स* (Nematodes) द्वारा जैविक नियत्रंण विधि ने अधिक ध्यान आकर्षित किया है साथ ही बैक्टिरियों का भी माइक्रोबियल तकनीक द्वारा उपयोग किया जा सकता है।

आज तक दीमकों में परजीविता (Parasitism) के बारे में बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध है। सामान्यतः चीटियों को दीमकों के परभक्षी की तरह प्रभावी तरीकों के तौर पर उपयोग किया जा सकता है और कुछ स्थितियों में चीटियाँ दीमकों को उनके घरों से भी भगाने में कारगर साबित हो सकती हैं लेकिन चीटियाँ दीमकों को ज्यादा गहरे भूमिगत घरों से भगाने में सक्षम नहीं हो सकती हैं।

दीमकों के सामान्य परभक्षी (Predator) :– दीमकों के सामान्य परभक्षियों को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है। एक जो विंग्ड फॉर्मस का शिकार करते हैं दूसरा जो वर्कर, सोल्जर का शिकार करते हैं। पहले वाले अवसरवादी प्रकृति के होते हैं।

दीमकों के विशेष परभक्षी / विंग्ड फॉर्मस :– भोजन ढूढ़ँने और घरों में रहने वाले दीमकों के अधिक दिखने वाले परजीवियों में कुछ पोनाराइन (Ponerine) और (Myrmicine) चीटियों की प्रजातियाँ एवं कशेरूकी (Vertebrates) हैं।

कशेरूकी वर्टिब्रेट्स (Vertebrates) :– बहुत से कशेरूकी प्राणी ऐसे हैं जिनकी भोजन की आवश्यकता पूर्ति दीमकों और अन्य चीटियों से होती है। बहुत–सी चीटियाँ खाने वाली प्रजातियाँ जैसे विशाल चीटीखोर (Giant ant eater), रेशमी चीटीखोर (Silky ant eater), *नॉर्थन टमनडुआ* (*Northern tamandua*) एवं *सॉउदर्न टमनडुआ* (Southern tamandua) जो केवल दीमकों और चीटियों को ही खाते हैं। पैंगोलिन एक स्तनधारी जीवों में से है जो फैमिली मेनिडी का सदस्य है जिसकी एशिया में तीन जातियाँ पायी जाती हैं। *मेनिस* (4 प्रजाति), *फटागिनस* (2 प्रजाति) और *स्मुट्शिया* (2 प्रजाति), अफ्रीका में पायी जाती हैं जो मुख्यतः चीटियों एवं दीमकों पर निर्भर हैं। इसी प्रकार मार्शुपियल जोकि पुरातन स्तनधारी जैसे नम्बेट (Banded anteater or Marsupial anteater) पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया में पाया जाता है जो केवल दीमकों को खाता है। फैमिली–टेकीग्लोसिडी के अण्डा देने वाले पुरातन स्तनधारी एसपिनी आंटइटर (Asspiny anteater) के नाम से भी जाने जाते हैं। ऑस्ट्रेलिया में आर्डवॉल्वस् (Aardwolves) एवं आर्डवार्कस् (Aardvarks) भी दीमकों को ही खाते हैं। यद्यपि ये जीव परिस्थितिकी तंत्र के मुख्य अंग है लेकिन इनका मानव निर्मित वातावरण में जैविक नियंत्रण पर सक्रिय उपयोग अंसभव है।

कीट परभक्षी / परजीवी (Insect predators/parasitoids) :– कीटों द्वारा दीमकों की परभक्षिता / परजीविता के संबंध में कम जानकारी उपलब्ध है जिसके कारण दीमकों की *क्रीप्टिक हेबिटस्* (Cryptic habits) और शक्तिशाली रासायनिक रक्षा प्रक्रिया है जो कि दीमकों के कीट परभक्षी के तरह उपयोग करने में एक मुख्य रूकावट है। कई वैज्ञानिकों ने दीमकों के जैविक नियंत्रण से संबधिंत साहित्यों का गहन विश्लेषण किया है और यह निष्कर्ष निकाला कि ''जैविक नियंत्रण अभी पूरक हो सकता है लेकिन जल्दी ही आने वाले समय में इसकी सभांवना के रूप में भूमिगत दीमकों के नियत्रंण की अन्य तकनीकें खोज निकालना है।'' इन सभी विश्लेषणों के अनुसार, अब तक कोई भी ऐसा परभक्षी / परजीवी ज्ञात नहीं है जो कि दीमकों का नियंत्रण करने में ठीक से प्रभावी हो। कुछ वर्ष पूर्व वैज्ञानिकों द्वारा एक नई प्रजाति टर्मिटोलोइमास मार्शल्ली की खोज की गई, यद्यपि इस प्रजाति के व्यवहार के बारे में अधिक जानकारी नहीं है, सिर्फ यह देखा गया है कि यह दीमकों के ऊपर परभक्षी है। इसके अतिरिक्त इस प्रजाति की बायोलॉजी और जैविक नियत्रंण के बारे में भी कुछ ज्ञात नही हैं। सन् 2014 में पुनः इस प्रजाति की खोज 78 वर्षों बाद की गई और इस प्रजाति की बायोलॉजी एवं जैविक नियत्रंण के रूप में उपयोग पर शोधकार्य किया गया। वैज्ञानिकों ने

टर्मिटोलोइमास मार्शल्ली को ओडोन्टोटेर्मस ओबोसस के उग्र परभक्षी के रूप में पाया है जोकि दीमकों में वर्कर को बड़े पैमाने पर अपने मैगोट्स को भोजन उपलब्ध कराने के लिए मारती है। जैसे ही टर्मिटोरियम में दीमकों की कॉलोनी चरम पर पहुंचती है वैसे ही दो सप्ताह में दीमकों की पूरी कॉलोनी को मार दिया जाता है। सन् 1964 में वैज्ञानिकों ने अंगोला से एक नई प्रजाति टर्मिटोकैलीफोरा मैकेडोइ फ्लाई का वर्णन किया।

एक अन्य रोचक परभक्षी बेरोथिड (*Berothid*) लार्वा *Lomamyia latipennis* (*न्यूरोप्टेरा: बेरोथीडी*) है जो दीमक के घर में रहता है और दीमक वर्करों को खाता है। एक उग्र *ऐलोमोन* (Allomone) का छिड़काव करने के कुछ समय बाद दीमक स्थिर और पैरालाइज्ड हो जाते हैं तथा बेरोथिड लार्वा इन पैरालाइज्ड दीमकों को खाता है। वयस्क बेरोथिड लार्वा लेसविंग्स् पर परभक्षी नही होते हैं और अधिकतर लेसविंग्स् नेक्टर पर जीवित रहते हैं मादा बेरोथिड दीमकों द्वारा संक्रमित काष्ठ लट्ठों, और पेड़ों पर समूहों में अण्डे देती है।

बहुत से टर्मिटोफिलस (*Termitophilous*) कीट, मुख्यतः *स्टाफाइलीनीडी* (*Coleoptera: Staphylinidae*) ज्ञात हैं जो दीमकों के घरो में रहते हैं। स्कटल–फ्लाई (*Diptera: Phoridae*) की बहुत–सी प्रजातियाँ दीमकों के परजीवी के रूप में पायी गई हैं। फैमिली केलीफोरोडी सब–फैमिली बेंगालीनी की कुछ मक्खियाँ दीमकों के परभक्षी के रूप में ज्ञात हैं। अफ्रीका के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में इसकी बहुत–सी प्रजातियाँ पायी जाती हैं जो दीमकों एवं उनके घोंसलों से संबधिंत है जैसे– *हेमीग्मनोकीटा* (*Hemigymnochaeta*), *टरमिटोकेलीफोरा* (*Termitocalliphora*), *ट्राइसायलिया* (*Tricyclea*), *मेफीकेंन्जिया* (*Mafikengia*), *बेंगलिया* (Bengalia), बेंगलिया एक उग्र वयस्क परभक्षी है जो दीमकों, लेपिडोप्टेरस लार्वा, चीटियों एवं उनके प्यूपा को खाती है। उत्पत्ति क्षेत्र में वर्टीशिया (Verticia) प्रजाति रक्षक दीमकों के सिर में विकसित होती है। इसमें केवल बेंगलिया और टरमिटोलोमस ही भारत में पायी जाती हैं। विश्व के विभिन्न भागों से टर्मिटोलोइमास मार्शल्ली ही एक ज्ञात प्रजाति है जो कि दीमकों को वृहद रूप में मारती है। इन परभक्षियों की बहुत सी प्रजातियों जैसे कोगानोमादइया, मफिकंजिया, ट्राइसाक्सिएला इत्यादि के जीवनचक्र के बारे में जानकारी नहीं है। जबकि फैमिली रिनिडी एवं सारकोफेगिडी की भी बहुत सी प्रजातियाँ जैविक रूप में दीमकों से संबंधित है।

दीमक घास स्थलों, वनों और मानव निर्मित पारिस्थितिकी तंत्रों का एक महत्वपूर्ण अंग है और भूमिगत जीव होने के कारण बहुत ही कम कीट इनके परभक्षी एवं परजीवी है। इस विषय के संबंध में बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध है अतः दीमकों के जैविक नियंत्रण में अधिक शोधकार्य की नितान्त आवश्यकता है ताकि निकट भविष्य में दीमकों के जैविक नियंत्रण के लिए कोई तकनीक विकसित की जा सके।

मनीष कनेरिया
शोध छात्र

शीशम कुम्हलन का जैव नियन्त्रण

सब्यसाची बैनर्जी, कनिष्ठ परियोजना अध्येता, शैलेश पाण्डेय, वैज्ञानिक–डी, अमित पाण्डेय, वैज्ञानिक–जी, मनीष सिंह भंडारी, वैज्ञानिक–डी, वन व्याधि शाखा, वन संरक्षण प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

शीशम, आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण वृक्षों की एक प्रमुख प्रजाति हैं। हाल के दशकों में, भारत के उत्तरी राज्यों से बड़े पैमाने पर शीशम के वृक्षों का सूखा रोग (कुम्हलन) से मृत्यु की सूचना मिली हैं। इस बीमारी के कारण बिहार, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश के शीशम प्लान्टेशन में काफी नुकसान हुआ हैं। एक महत्वपूर्ण लकड़ी प्रजाति होने के नाते, इसने न केवल राज्य वन विभागों के पारिस्थितिकी लक्ष्यों को बाधित किया हैं, बल्कि बड़े और सीमांत किसानों तथा काष्ठ उद्योग को वित्तीय नुकसान भी पहुँचाया हैं। वैज्ञानिकों के अनुसंधान ने शीशम के वृक्षों की मृत्यु का कारण फ्यूजेरियम सोलनि द्वारा होने वाली बीमारी विल्ट (सूखारोग या कुम्हलन) को प्रमाणित किया हैं।

कुम्हलनरोग के लक्षण

वन अुसंधान संस्थान, देहरादून के द्वारा किए गए सर्वेक्षण में पाया गया है कि शीशम के वृक्षों की मृत्यु के कारण 800–1800 करोड़ रूपये का नुकसान हुआ हैं। शीशम विल्ट से होने वाली तबाही का मुकाबला करने के लिए कवकनाशियों का उपयोग किया जा सकता हैं, लेकिन शीशम विल्ट के नियंत्रण के लिए प्रभावी कवकनाशियों पर बहुत कम अध्ययन हुआ है। कवकनाशियों का उपयोग, विशेष रूप से शीशम विल्ट का प्रबंधन करने के लिए तर्कसंगत नहीं लगता, क्योंकि जब तक सूखा रोग के लक्षण सामने आते हैं, तब तक कवकनाशियों द्वारा उपचार करने के लिए बहुत देर हो जाती हैं। इसके अलावा, वन्यजीवों पर इसके दुष्प्रभाव और पर्यावरण प्रदूषण के स्रोत के रूप में इन का उपयोग एक चिंता का विषय हैं। प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में विघ्न डाले बिना बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए जैव नियंत्रण ऐजेंट एक आशाजनक विकल्प हैं। विभिन्न शोध कार्यों ने ट्राइकोडर्मा एवं पौधों की जड़ों में निवास करने वाले जीवाणुओं को फ्यूजेरियम सहित कई पादप रोगजनकों के खिलाफ उपयोगी बताया हैं। इस पृष्ठभूमि को देखते हुए, शीशम विल्ट के खिलाफ लाभकारी जीवाणुओं एवं ट्राइकोडर्मा का उपयोग अधिक प्रभावी हो सकता हैं, जो कि पर्यावरणीय रूप से स्वीकार्य भी हैं।

स्यूडोमोनास *सिरेशिया*

वर्तमान अध्ययन में ट्राइकोडर्मा एवं जीवाणुओं (*सिरेशिया* एवं *स्यूडोमोनास*) को स्वस्थ–शीशम के वृक्ष की जड़ों के पास की मृदा से प्राप्त किया गया। ग्रीनहाउस में इनके परीक्षण हेतु मिट्टी, गोबर खाद एवं रेत को 1:1:3 अनुपात में मिलाकर पॉटिंग मिश्रण तैयार किया गया। तत्पश्चात्, तैयार किए गए पॉटिंग मिश्रण को टाइकोडर्मा से उपचारित किया गया। एक अन्य प्रयोग में सिरेशिया एवं स्यूडोमोनास से पॉटिंग मिश्रण को उपचारित किया गया। उपचारित पॉटिंग

मिश्रण को थेलों में भरने के उपरांत–शीशम के एक वर्षीय पौधों का रोपण किया गया। कुम्हलन रोग पर जैव नियंत्रक सूक्ष्मजीवों का प्रभाव देखने के लिए जैव नियंत्रकों से उपचारित पॉटिंग मिश्रण में रोपण के दौरान शीशम की जड़ों में फ्यूजेरियम सोलनि को मिलाया गया। इसी प्रकार केवल पॉटिंग मिश्रण में भी रोपण के दौरान पौधों की जड़ों में फ्यूजेरियम सोलनि को मिलाया गया। वर्तमान अध्ययन में जैव नियंत्रकों एवं फ्यूजेरियम सोलनि से उपचारित सभी पौधे स्वस्थ रहे एवं कुम्हलन रोग के लक्षण देखने को नहीं मिले। इसके विपरीत केवल फ्यूजेरियम सोलनि से उपचारित पौधों में कुम्हलन रोग के लक्षण (पत्तियों का मुर्झाना, पीला पड़ना) 20 दिन पश्चात प्रदर्शित हुए। अन्ततः, 35 दिन बाद, सभी पौधों की सूखने के कारण मृत्यु हो गई। वर्तमान अध्ययन, ट्राइकोडर्मा एवं जीवाणुओं की शीशम के फ्यूजेरियम विल्ट के खिलाफ प्रभावकारिता की पुष्टि करता है। इन परिणामों के पुष्टिकरण के लिए किसान के खेतों में बड़े पैमाने पर परीक्षण की आवश्यकता है। यह अध्ययन सुझाव देता है कि रासायनिक कवकनाशी की तुलना में जैव नियंत्रक ऐजेंट को सकारात्मक दृष्टिकोण के रूप में पेश किया जा सकता है।

जैवनियंत्रक ऐजेंट ट्राईकोडर्मा द्वारा उपचारित शीशम के स्वस्थ पौधे

सब्यसाची बैनर्जी
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

पक्षियों पर ऋतु परिवर्तन का प्रभाव

योगेश पारधी, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, हीरा लाल असाटी, तकनीकी अधिकारी, प्रमोद सिंह राजपूत, तकनीकी अधिकारी,
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

नीले आसमान में स्वतंत्र रूप से उड़ते रंग बिरंगे पक्षी अनायास ही हमारा ध्यान अपनी ओर खिंचते हैं। पक्षी की स्वतंत्र उड़ान देखकर ही व्यक्ति के मन में भी उसी तरह उड़ने की आकांक्षा पैदा हुई। मनुष्य का बालपन से ही पक्षियों के प्रति आकर्षण रहा हैं। दादी–नानियों की कहानियों में भी पक्षी की विशेष भूमिका हुआ करती थी। वर्तमान परिदृश्य में बच्चों को पक्षियों के प्रति व दादी नानी की कहानियों में कुछ खास रूचि नहीं रही हैं। अब टेलीविजन में आने वाले कार्टून कैरेक्टर छोटा भीम, सीजेमोन, मोटू–पतलू जैसे चरित्र को बच्चे देखना पंसद करते हैं। वर्तमान समय में बालक–बालिका प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं। न ही वे कौओं को पकड़ने के लिए उनके पीछे भागते हैं और न ही कोयल की कूहूक सुनकर नकल उतारने की कोशिश करते है। अब वर्तमान समय के बच्चे डोरेमॉन, सुपरमैन, स्पाइडरमैन, आयरन मैन जैसे काल्पनिक चरित्र को अपने चरित्र में उतारने का प्रयत्न करते है। इसी वजह से एक संकट ग्रस्त पक्षी का घर बचाने के लिए पूरे विश्व को एकजुट होकर विश्व गौरैया दिवस मनाने की जरूरत पड़ी। अब स्थिति कुछ ऐसी हो चुकी है कि अगर हम संकट प्राय पक्षियों के लिए वर्ष का एक दिन भी उनके संरक्षण के लिए रखे तो भी साल के 365 दिन कम पड़ जाएंगे।

आज क्या हम मनुष्य ही हैं जिसके अन्दर मानवता मर चुकी हैं केवल भौतिकवादिकता ही शेष बची हैं और उसकी पूर्ति करने के लिए हम पृथ्वी पर कांक्रीट के बड़े बड़े जंगल उगाऐ जा रहे हैं। समाज का बुद्धिजीवी वर्ग टेलीविजन पर दिखाए जाने वाले इन पक्षी संरक्षण दिवसों को अपने छत के ऊपर एक कटोरी में पानी व कुछ खाने के लिए दाने रखकर अपने कर्तव्य की इतिश्री करने में अपनी महानता समझते हैं। बड़े–बड़े बैनर पकड़कर चंद कदम सड़को पर चलना कुछ विशेष दिवस में वर्तमान दौर का एक नया शगल हैं। इतनी संवेदनहीनता वो भी प्रकृति के साथ, बहुत ही विस्मयकारी हैं। क्या आपने कभी महसूस किया हैं कि आज कल पड़ने वाली गर्मी हर साल पिछले दस साल का रिकॉर्ड तोड़ देती हैं। हम तो अपने कांक्रीट के घरों में बहुत ही आसानी से आरामदायक जीवन जीते हैं परन्तु क्या आपने कभी सोचा हैं कि हरित जंगल और इन पक्षियों का घर तोड़कर उन्हें इस गर्मी में हमने मरने पर मजबूर कर दिया हैं, बिना सोचे समझे प्रकृति के संसाधनों का दोहन इस स्तर पर किया हैं कि वर्तमान समय में पृथ्वी का तापमान हर साल बढ़ता ही जा रहा हैं। जिससे एक तो हम वन्य प्राणियों के जीवन को खतरे में डाल रहे हैं, जिसकी वजह सें उनके साथ रहने वाले अन्य सहचर विलुप्त होते जा रहे हैं। ऐसा नहीं हैं कि पक्षियों के जीवन पर खतरा केवल ग्लोबल वार्मिंग की वजह से हैं अपितु पर्यावरण प्रदूषण भी उतना ही विनाशकारी भूमिका निभाता है ।

मनुष्य ने अपनी भैतिकवादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति के संसाधनों का दोहन कर इसके संतुलन को बिगाड़ा है। इसी का परिणाम है कि कहीं पर ऋतुचर्या परिवर्तन जैसी अप्राकृतिक घटना, कहीं पर सूखा, कहीं पर अतिवृष्टि, कहीं पर अत्यधिक गर्मी तो कहीं पर हाड़ कपा देने वाली ठंड, पूरे विश्व में आम हो चुकी हैं। जिससे वहाँ के जंगल धीरे–धीरे नष्ट होते जा रहे हैं। वैज्ञानिक अनुमान हैं कि हर साल लगभग 10 पक्षियों की प्रजातियाँ विलुप्ति की कगार पर पहुँचती हैं, एक और वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार अब तक लगभग 500 पक्षियों की प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं। साथ ही यह एक अर्धसत्य हैं कि इन पक्षियों की विलुप्तता के लिए जितनी जिम्मेदार प्राकृतिक आपदाएँ हैं, उनसे कही ज्यादा मनुष्य और उसकी अपरिमित विलासताएं हैं।

पक्षियों के विलुप्त होने के कारण को हम दो भागों में रेखाकिंत कर सकते हैं :–

1. प्राकृतिक कारण :– ये ऐसे कारण हैं जिनके ऊपर मनुष्य का कोई जोर नहीं चलता हैं। परंतु कुछ हद तक मनुष्य खुद इन कारणों के उद्दीपन का सूत्रधार बनता हैं ।

(अ) दावानल :– यह प्रतिवर्ष हमारे वनस्पति एवं पौधों को लील जाता हैं। पूरे विश्व में जहाँ मौसम गर्म होने की वजह से वनों में आग लग जाती हैं जिससे वनस्पति व पेड़ पौधे तो जलते ही हैं साथ ही साथ पक्षियों के आशियाने भी उजड़ जाते हैं।

(ब) बाढ़ :– नदी किनारे अधिकतर पेड़ों पर बड़ी संख्या में पक्षी रहते हैं। जब बाढ़ का पानी पेड़ों को अपना शिकार बनाता हैं तब उससे भी पक्षियों की मृत्यु हो जाती हैं।

(स) आंधी चक्रवात :– तेज हवा या आँधी आने से अनगिनत पक्षियों की मृत्यु हो जाती हैं।

(द) भूकंप :– भूकंप की विनाशलीला में भी अनेक पक्षी अकाल समय में काल कलवित हो जाते हैं।

2. मानव जनित कारण :– 1. प्रायः हमने देखा हैं कि सड़कों के किनारे लगे पेड़ों में अनेक पक्षी अपना घोसला बनाते हैं। जब सड़के चौड़ी होती हैं तो पेड़ कटने से अनेक घोसले नष्ट हो जाते हैं और पक्षी अकारण काल के ग्रास में समा जाते हैं।

;3. मोबाइल टावर :– वैज्ञानिक शोध में पाया गया हैं कि मोबाईल टावर से निकलने वाली विकिरण पक्षियों की उड़ान में बाधा उत्पन्न करती हैं। जिससे कि वे रास्ता भटक जाते हैं और यही वजह हैं कि उनकी अकारण ही मृत्यु हो जाती हैं।

4. भवन व इमारतों के निर्माण में :– मनुष्य ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए प्राकृतिक जंगल को नष्ट करके कांक्रीट के जंगल खड़े कर दिए हैं जिससे पक्षियों का वास स्थान उनसे छिन गया हैं।

5. शिकार :– प्राचीनकाल से ही मनुष्य पक्षियों का शिकार करता आया हैं। शिकार की प्रवृत्ति ने पक्षियों की घटती संख्या में इजाफा किया हैं। आज भी प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में पक्षी शिकार किए जाते हैं।

उपरोक्त सभी कारणों से पक्षियों की संख्या में दिन प्रतिदिन कमी आती जा रही हैं। प्राकृतिक व मानव जनित कारण दोनों ही समान रूप से पक्षियों की संख्या में कमी के लिए जिम्मेदार हैं। साथ ही पक्षियों की संख्या में कमी के लिए एक और कारण जिम्मेदार है वह पक्षी प्रवजन हैं। जहां पक्षी प्रवजन पक्षियों के लिए जीवन सुगमता का अनुकुलन हैं वही अनुकुलन आज उनकी विनाशता का कारण बनता जा रहा हैं। जितने पक्षी अपने मूल स्थान से प्रवजन के लिए निकलते हैं और वापस अपने मूल स्थान पर आते हैं। उनकी संख्या में कमी आ जाती हैं। प्रवजन में बाधा आने का मूल कारण ऋतु परिवर्तन का होना हैं। चूंकि प्रवजन पक्षियों का मूल आनुवांशिक गुण हैं। जिसकी वजह से अनेक प्रजाति के पक्षी ऋतु परिवर्तन के

बावजूद प्रवजन करते हैं। वर्तमान समय में ऋतु परिवर्तन का पक्षियों के प्रवजन पर इतना गहरा और घातक असर पड़ता हैं कि पक्षियों की कई प्रजातियाँ लुप्त प्रायः हो चुकी है या हो रही हैं।

पक्षी बेहतर आवास व खानपान के लिए एक स्थान से अन्यंत्र स्थान पर ऋतु परिवर्तन के समय जाते हैं इस कारण इनकी संख्या में भी भारी गिरावट आती हैं। जैसे इलाहाबाद के संगम तट पर दिसंबर से मार्च तक भारी गिरावट दर्ज की गयी हैं। ऐसा नहीं हैं कि पक्षियों के जीवन पर केवल ऋतु परिवर्तन का ही असर पड़ा है, पर्यावरण प्रदूषण भी एक कारण हैं। पक्षियों का प्रवजन या पक्षियों का प्रवास पक्षीविज्ञान का बहुत ही महत्वपूर्ण अंग हैं। उनका यह प्रवजन ऋतु परिवर्तन के समान नियमित व क्रमिक होता हैं। युगों से यह मनुष्यों में उत्सुकता एवं जिज्ञासा उत्पन्न करता रहा हैं। यहां तक कि रेड इंडियन ने अपने कलेंडर के महीनों के नाम प्रवजन करने वाली चिड़ियों के आगमन पर ही रखा हैं। चिड़ियों के प्रवजन के प्रसिद्ध विशेषज्ञ लैंडसबरोयमसन ने प्रवजन की व्याख्या इस प्रकार की हैं – "निवास स्थान का समय –समय पर बार–बार और एकांतर दिशा में बदलना जिससे हर समय जीवनोपयोगी प्राकृतिक अवस्थाएं प्रवजन हेतु उपलब्ध हो सके"।

झीलों, नदी, तालाबों में हर साल जाड़ों में तरह तरह के जो असंख्य जल पक्षी दिखाई देते हैं। उनमें से अनेक हजारों किलोमीटर की कठिन यात्रा करके यूरोप, उत्तर एशिया आदि ठंडे प्रदेश से हमारे देश में आते हैं।

इन आगंतुक पक्षियों में दुर्लभ साइबेरियन सारस, दुनिया का तेज उड़ने वाला बहरी, आकर्षक शिकारी पक्षी मछलीमार, गुलाबी मैना और अनेक प्रकार के बत्तख आदि शामिल हैं। प्रवासी पक्षी जाड़ों में इसलिए आते हैं क्योंकि उस समय उनके अपने देश में जल क्षेत्र में बर्फ की परत जम जाती हैं और ठिठुरने वाली ठंड के कारण इन पक्षियों का आहार बनने वाले जीव या तो मर जाते हैं या जमीन में डुबककर शीत निद्रा में चले जाते हैं। इन इलाकों में रात लम्बी व दिन छोटे होते हैं। इन सब कारणों से आहार खोजना मुश्किल हो जाता हैं। यही वजह हैं कि ये भारत जैसे उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में आ जाते हैं, क्योंकि ऐसे में यहां भोजन की प्रचुरता रहती हैं। परंतु यहां पर स्थानीय शिकारी इनका शिकार करते हैं।

पक्षियों पर ऋतु परिवर्तन का जब प्रभाव होता हैं और वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं तब ऐसे समय पक्षियों पर समग्र ध्यान देने की आवश्यकता हैं जिसमें सरकारी एजेंसियां, वन विभाग, एन0 जी0 ओ0, पक्षी प्रेमी, पर्यावरण प्रेमी आदि सभी को मिलकर वृहत् स्तर पर कार्य करने होगें, जिससे इनका जीवन सुलभ हो सकें।

''आओ मिलकर करे वादा यह सब संग

अकारण न करे वरण मृत्यु को खग'' ।

योगेश पारधी
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

पोपलर के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

अरविन्द कुमार, वैज्ञानिक–ई, के. पी. सिंह, वैज्ञानिक–डी एवं रवि प्रकाश मौर्य *
वन संरक्षण प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून (उत्तराखंड)
*गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखंड)

1–पोपलर का जड़ एवं तना भेदक

वैज्ञानिक नाम : *एप्रिओना सिनेरिया* (*कोलिओटेरा : सेरम्बीसीडी*)

परिचय

यह कीट उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, जम्मू और कश्मीर में पोपलर के पेड़ों का बहुत हानिकारक कीट हैं। इस कीट की मादा पेड़ की छाल पर क्रीमी सफेद रंग के 7–8 मि.मी. लम्बे एवं 3–3.2 मि.मी. मोटे अंडे देती हैं जिसमें से क्रीमी सफ़ेद रंग का ग्रब (सूँडी) निकलती हैं। यह ग्रब (सूँडी) पूर्ण विकसित होने पर लगभग 60–80 मि.मी. लंबा होता हैं। इस कीट का जबड़ा काटने और चबाने वाला एवं काफी मजबूत होता हैं जिससे यह पेड़ की लकड़ी को आसानी से काट कर उसमें छेद बना लेता हैं। इस ग्रब (सूँडी) का शरीर तीन वक्षीय खंडों और नौ उदर खंडों में बटा होता हैं जिन पर किनारे की तरफ नारंगी रंग के बिन्दु पाये जाते हैं। इसके प्यूपा की लंबाई लगभग 50–60 मि.मी. और चौड़ाई लगभग 18–20 मि.मी. तक होती हैं। एंटीना दूसरे उदर खंड तक विस्तारित होता हैं जहां वे नीचे की ओर एलीट्रा और पंखों से मुड़े होते हैं। इस कीट का वयस्क एक लंबी श्रंगिका (Antenna) वाला भृंग कीट हैं जिसका शरीर लगभग 35–50 मि.मी. लंबा होता हैं और इनकी श्रंगिकायें (एंटीना) शरीर से अधिक लंबे होते हैं। इसका शरीर बादामी रंग का होता हैं जिसके वक्षीय खंड पर दो नुकीली संरचनाओं और पंखो (एलीट्रा) के आधार पर कई काले बिन्दु होते हैं। इस कीट का जीवनचक्र दो साल में पूरा होता है।

क्षति की प्रकृतिः इस कीट का संक्रमण दो साल के छोटे वृक्षारोपण से ही शुरू हो जाता हैं। प्रारम्भ में यह कीट शाखाओं पर अंडे देता है जहाँ से गृब (सूँडी) तने में प्रवेश कर आंतरिक रूप से रहते हैं और आंतरिक सुरंग बनाते रहते हैं। यह कीट पेड़ की शाखाओं से नीचे की ओर सुरंग बनाते हुए जड़ तक पहुँच जाते हैं। एक लार्वा एक पेड़ में आठ तक समानांतर सुरंगें बना सकता है। लार्वा मार्च से अक्टूबर तक सक्रिय रहता हैं, लेकिन प्रमुख गतिविधि की अवधि जुलाई से अक्टूबर तक रहती है। सर्दियों में नवंबर से फरवरी माह तक ग्रब सुषुप्तावस्था में रहता है। ग्रब छेद के माध्यम से लकड़ी के कतरन को बाहर निकालता हैं जोकि पेड़ों की जड़ों के पास देख जा सकता हैं। साथ ही इसका वयस्क कीट पेड़ों की छाल को कुतरता हैं जिसके छोटे–छोटे निशान आसानी से देखे जा सकते हैं।

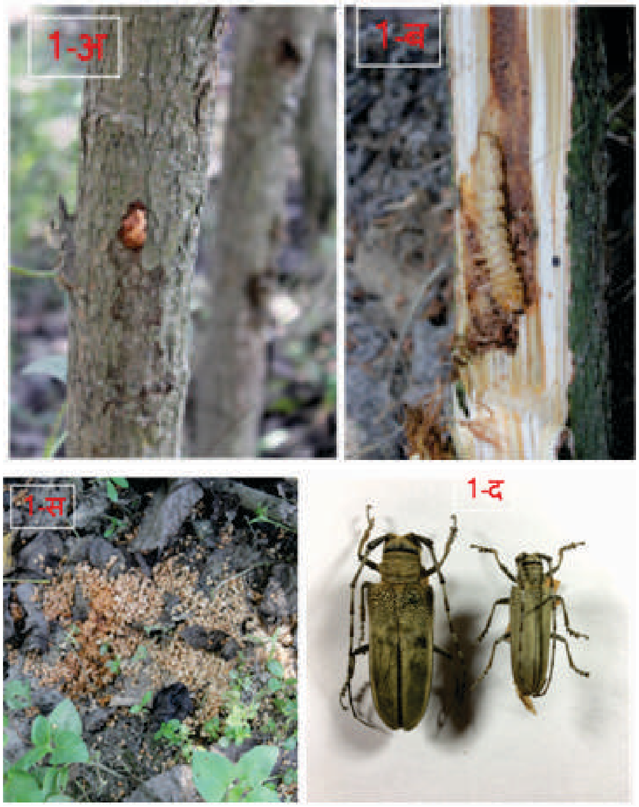

चित्र 1 : अ– तना भेदक प्रकोप के प्रारम्भिक लक्षण ; ब–लार्वा एवं पेड़ में बनाया गया छेद; स– जमीन पर तना भेदक के प्रकोप के लक्षण; द–वयस्क मादा एवं नर कीट।

प्रबंधन अभ्यासः

1. अन्य वैकल्पिक प्रजाति जैसे शहतूत, सेब, अमरूद, अर्जुन, जामुन के बागों के आस–पास पोपलर नहीं लगाना चाहिए।

2. प्रभावित शाखाओं को काट देना चाहिए।

3. मुख्य तने में गृब के प्रवेश को रोकने के लिए नियमित रूप से शाखाओं की छंटाई करनी चाहिए।

4. छेद में लोहे के तार डालें और कीट को मार दें और छेद को मिट्टी से बंद कर देना चाहिए ।

5. पेट्रोल + केरोसीन तेल (1:1) अथवा एथाईल एसीटेट /5 मि.ली. प्रति छेद; डाईक्लोरवोस 76 ईसी दवा का/2 मि.ली. को प्रति छेद; अथवा अन्य धूम्रकारक कीटनाशक को छेद में डालकर कीचड़ मिट्टी से बंद कर देना चाहिए।

6. अधिक संक्रमित शाखाओं या पेड़ को जड़ से खोदकर नष्ट कर देना चाहिए और आंतरिक कीटों को भी नष्ट कर देना चाहिए।

2–छालभक्षी कीट

वैज्ञानिक नामः *इंदरबेला क्वाड्रिनोटाटा (लेपिडोटेराः कोसिडा)*

परिचय

छालभक्षी कीट *इंदरबेला क्वाड्रिनोटाटा* का प्रकोप उत्तर–पश्चिमी भारत में पिछले कुछ दशकों से पोपलर के प्रमुख कीट के रूप में देखा गया हैं। इनके अलावा यह 70 से अधिक वन एवं फल प्रजाति के पेड़ों पर इसका प्रकोप होता हैं जिसमें वन की अल्बिजिया प्रजाति, बबूल प्रजाति, बस्सिया प्रजाति, सेमल प्रजाति, केजूरीना प्रजाति, अर्जुन प्रजाति, गम्हार प्रजाति, सागौन प्रजाति, बेर प्रजाति, शीशम प्रजाति, आदि प्रजातियों पर मुख्यतः आक्रमण करता हैं। मैथुन के बाद मादा कीट पेड़ों की छाल की दरारों में हल्के भूरे रंग के अंडे देती हैं। वयस्क मादा जून–जुलाई के महीने में अंडे देती हैं। जिससे लगभग 3–4 दिनों के बाद लार्वा बाहर आता है पूर्ण विकसित लार्वा लगभग 55–60 मिमी लंबा है चॉकलेटी भूरी रंग की होती है जिसकी त्वचा चिकनी होती है। शरीर तीन वक्ष और नौ उदर खंडों वाला होता है। इसका सिर भाग वक्षीय एवं उदर खंडों की तुलना में अधिक मोटा होता हैं।

इस कीट का वयस्क पतंगा 40–45 मि.मी. के पंख फैलाव के साथ लगभग 20–25 मि.मी. लंबी होती हैं। शरीर घने भूरे बालों से ढ़का होता हैं। इसके पंख चॉकलेटी रंग के होते हैं जिन पर हल्के भूरे रंग की धारियाँ होती हैं। पिछले पंख हल्के भूरे रंग के होते हैं जिनपर लम्बवत रेखाएँ (Longitudinal vein) होती हैं। इसके लार्वा और वयस्क दोनों ही रात्रिचर होते हैं।

नुकसान की प्रकृतिः इसका लार्वा शाखाओं के आधार पर छेद बनाता हैं अंदर घुसकर रहता हैं लार्वा पेड़ों के तने में आमतौर पर शाखाओं के जड़ों में स–आकार की सुरंग बनाता हैं तथा रात में निकलकर पेड़ की छाल को खाता हैं। इस कीट के आक्रमण की पहचान कीट के द्वारा पेड़ पर बनाए गए रीबन नुमा जाले की उपस्थिति से लगाया जा सकता हैं। इस कीट का आक्रमण जुलाई से अक्टूबर के माह से शुरू होता हैं एवं 9–11 महीनों तक पेड़ की छाल को खाता रहता हैं और छाल के टुकड़ों, मल के दाने के साथ अपने लार (सिलीकेन) से जाला (रीबन) बनाता हैं जिसे लगभग एक इंच चौड़े रीबन के रूप में पेड़ों पर देखा जा सकता हैं। इस कीट के बार–बार संक्रमित होने से युवा पेड़ों की मृत्यु हो जाती हैं।

चित्र 2 : अ– पोपलर के पेड़ों में प्रारम्भिक लक्षण; ब–लार्वा के प्रकोप के लक्षण; स– छाल भेदक लार्वा; द–वयस्क मादा कीट ।

प्रबंधन के तरीकेः

1. क्षतिग्रस्त छाल और प्रभावित शाखाओं को इकट्ठा कर जला देना चाहिए।

2. वृक्षारोपण कम से कम 4–5 मी. दूरी पर करना चाहिए।

3. खेत की नियमित सफाई और जुताई करनी चाहिए।

4. गर्मी के महीनों में पेड़ों की सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

5. फलों के बाग विशेषकर लीची, अमरूद के आस–पास वृक्षारोपण या मिलावटी वृक्षारोपण नहीं करना चाहिए।

6. जुलाई और अगस्त के महीने में प्रकाश का उपयोग करके वयस्क पतंगों को आकर्षित कर मार देना चाहिए ।

7. कीट द्वारा बनाए गए छेदों में लोहे की तार डालकार कीटों को मार देना चाहिए।

8. मुख्य तने के प्रभावित हिस्से को साफ कर कीट के बनाए हुए छेद में डाईक्लोरोवोस कीटनाशक को पेट्रोल या मिट्टी के तेल मिला कर छेदों में डालकर और छेद को मिट्टी से बंद कर देना चाहिए।

9. कार्बोफ्यूरान 3 जी दानों को भी छेदों में डाला जा सकता है।

10. मोनोक्रोटोफॉस/0.05% या क्विनालफोस/0.05% या क्लोरपायरीफॉस/0.04% या कार्बेरिल 50 डब्ल्यूपी/0.04% का पानी के घोल का छिड़काव प्रभावित पेड़ों के ऊपरी भाग पर पैर पावर स्प्रेयर के द्वारा छिड़काव किया जाना चाहिए।

3–पोपलर का निष्पत्रक कीट

वैज्ञानिक नाम : *क्लोस्टेरा कुप्रिटा (लेपिडोटेरा: नॉटोडोंटिडी)*

परिचयः यह कीट भारत के सभी पोपलर उगाये जाने वाले क्षेत्रों में पाया जाता है जोकि पोपलर को हाँनि पहुँचाने वाले प्रमुख कीटों में एक है। इस कीट का आक्रमण भारतवर्ष में 1966 से दर्ज है तथा यह सभी पोपलर उत्पादन क्षेत्रों में पाया जाता है।

मादा कीट पत्ती की निचली सतह पर और कभी–कभी तने पर समूह में अंडे देती है अंडे शुरू में हल्के गुलाबी लाल रंग के होते हैं जिनके ऊपर भूरे रंग की धारियाँ होती हैं। अंडों से लार्वा 4–9 दिनों में बाहर निकल जाते हैं। प्रारम्भ में लार्वा की पहली एवं दूसरी अवस्था सामूहिक होती है जो पत्ती की निचली सतह पर रहते हैं। लार्वा कीट की प्रारंभिक अवस्था में गहरे भूरे रंग के होते जिनका सिर काले रंग का होता है और बाद के स्टार लार्वा हल्के भूरे रंग के होते हो जाते हैं जिनके शरीर पर छोटे–छोटे बाल होते हैं। सिर का कवच भूरा हो जाता है। पूर्ण विकसित लार्वा के शरीर पर हल्के भूरे रंग के लम्बवत रेखाएँ होती हैं परन्तु चौथे एवं 11 वें खंडों में पृष्ठीय सतह के मध्य में काले रंग की नुकीली संरचना होती है। साथ ही शरीर के प्रत्येक खंड पर चार पीले रंग की उभरी हुई संरचनाएं होती हैं जिसमें दोनों किनारों पर और दो पृष्ठीय सतह पर होती हैं। पूर्ण विकसित लार्वा लगभग 30–35 मि.मी. लंबा होता हैं। लार्वाकाल 10–16 दिनों का होता है जिसके बाद ये प्यूपा में परिवर्तित हो जाता हैं। प्यूपा भूरे से गहरे भूरे रंग का तथा बेलनाकार, पीछे के छोर पर नुकीला होता हैं। प्युपा से वयस्क 6–9 दिनों में निकलते हैं मादा कीट मैथुन के 2–4 दिन के उपरान्त 200–450 तक अंडे देती हैं। वयस्क कीट मध्यम आकार का लगभग 20–25 मि.मी. लंबा जिनके पंखों का फैलाव लगभग 35–40 मि.मी. का होता हैं। वयस्क के सामने के पंखों पर गहरी भूरी रंग की धारियों के साथ पाँच काले रंग के धब्बे होते हैं। कीट अपना जीवन चक्र लगभग 19–31 दिनों के भीतर पूरा कर लेता है तथा एक वर्ष में इसकी 8–9 पीढ़ियां होती हैं।

नुकसान की प्रकृतिः इस कीट की केवल लार्वा अवस्था ही पौधे के लिए हानिकारक होती है। युवा लार्वा प्रारम्भ में समूह में पत्तियों पर रहते हैं एवं पत्तियों की ऊपरी सतह को खाकर नुकसान पहुँचाते हैं। लार्वा बड़े होने पर अलग–अलग पत्तियों पर जाकर उन्हें खाकर नुकसान पहुँचाते हैं। सभी कीटों के बढ़ते आँकड़ों में इस कीट का संक्रमण लगभग हर वर्ष दिखाई देता हैं। इस कीट की प्रजाति का आक्रमण अप्रैल–मई माह में शुरू होता हैं और अक्टूबर के प्रथम पखवाड़े तक रहता हैं। इस कीट का आक्रमण पोपलर वाले क्षेत्रों में लगभग 100% पेड़ों में हो जाता हैं और अनुकूल परिस्थितियों में 60–100% तक पत्ती खाकर नष्ट कर देता

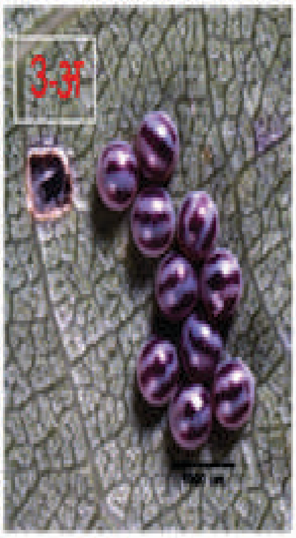

चित्र 3 : अ– कुप्रेता के अंडे; ब–कुप्रेता का लार्वा; स– कुप्रेता का प्यूपा; द–वयस्क मादा कीट।

प्रबंधन के तरीके:

1 लार्वा परभक्षी कीट कैंथेकोना फुरसिलाटा का संरक्षण और संवर्धन करना चाहिए।

2. प्रतिरोधी क्लोन जैसे WSL-4 WSL-12 WSL-18, WSL-4, D-67,D-82, D-172, D-273, S7C4, 82-42-5 आदि का चुनाव करना चाहिए।

3. पत्तियों पर दिये गए कीट के अंडों को इकट्टा कर नष्ट कर देना चाहिए।

4. कीट के प्यूपावस्था (overwintering pupae) को नष्ट करने के लिए दिसंबर एवं मई माह में खेत की जुताई कर देनी चाहिए।

5. अंडे के परजीवी कीट ट्राइकोग्रामा किलोनिस, ट्राइकोग्रामा पॉली, ट्राइकोग्रामा एक्सिगुअम का प्रयोग/ 1–1.5 लाख अंडे प्रति हेक्टर करना चाहिए।

6. जीवाणु जैव कीटनाशक बैसिलस थुरिंजिएनसिस (बायो–लिप, डिपेल या बायो–टॉक्सिक)/1–2 किलोग्राम प्रति हेक्टर का उपयोग पानी के साथ छिड़काव करना चाहिए ।

7. नीम बीज खली रस का/0.1% का उपयोग पानी के साथ छिड़काव करना चाहिए ।

8. रासायनिक कीटनाशक–कार्बारिल/0.04%, क्विनालफॉस/0.05% या प्रोफेनोफॉस/0.02% पानी का घोल को प्रभावित क्षेत्रों में इस कीट का नियंत्रित करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

4–पोपलर का निष्पत्रक कीट–2

वैज्ञानिक नाम : *क्लोस्टेरा फुल्गुरिटा* (*लेपिडोटेरा: नोटोडोंटिडी*)

परिचय :

यह कीट भी भारत के सभी पोपलर उगाये जाने वाले क्षेत्रों में पाया जाता हैं जोकि पोपलर को हानि पहुँचने वाला प्रमुख कीटों में से एक हैं। यह कीट भी क्लोस्टेरा कुप्रिटा की भाँति ही सभी पोपलर उत्पादन क्षेत्रों में नुकसान पहुँचाता हैं। इसकी मादा कीट पत्ती की निचली सतह पर और कभी–कभी तने पर 100–200 के समुह में अंडे देती हैं। अंडे शुरू में हल्के हरे रंग के होते हैं और बाद में हल्के पीले रंग में बदल जाते हैं। अंडों से लार्वा 5–9 दिनों में बाहर निकलते हैं। प्रारम्भ में लार्वा की पहली अवस्था सामूहिक होती हैं जो पत्ती की निचली सतह पर रहते हैं। लार्वा कीट की प्रारंभिक अवस्था गहरे भूरे रंग की होती हैं और बाद की अवस्था का लार्वा हल्के भूरे रंग का हो जाता हैं लार्वा के शरीर पर छोटे– छोटे बाल होते हैं। तथा सिर का कवच काले रंग का होता हैं पूर्ण विकसित लार्वा के शरीर पर हल्के भूरे रंग के लबवत रेखाएँ होती हैं इसके शरीर के चौथे एवं 11 वें (प्रथम एवं 8 वें उदर खंडों) खंडों में पृष्ठीय सतह के मध्य में लाल रंग की नुकीली संरचना होती हैं जिस पर बड़े बालों का गुच्छा होता हैं। पेट के प्रत्येक खंड पर चार पीले रंग की संरचनाएं होती हैं जिसमें दो, दोनों किनारों पर और दो पृष्ठीय सतह पर होती हैं। पूर्ण विकसित लार्वा लगभग 30–35 मि.मी. लंबा होता हैं। लार्वा से प्यूपा 9–17 दिनों में परिवर्तित हो जाता हैं। प्यूपा गहरे भूरे रंग का तथा बेलनाकार होता हैं। प्युपा से वयस्क 8–10 दिनों में निकलता हैं। मैथुन के 2–4 दिनों के उपरान्त मादा 200–320 तक अंडे देती हैं। वयस्क कीट मध्यम आकार का लगभग 20–25 मि.मी. लंबा जिसके पंखों का लगभग फैलाव 35–40 मि.मी. का होता हैं। वयस्क के प्रथम पंख भूरे रंग की होती हैं जिन पर सुनहरी रंग की धारियाँ होती हैं। कीट अपना जीवन चक्र लगभग 16–26 दिनों के भीतर पूरा करता हैं तथा एक वर्ष में इसकी 8–9 पीढ़ियां होती हैं।

नुकसान की प्रकृतिः इस कीट की नुकसान करने की प्रकृति भी क्लोस्टेरा कुप्रिटा के तरह ही होती हैं एवं इसका भी केवल लार्वा अवस्था ही पौधे के लिए हानिकारक होती हैं। युवा लार्वा प्रारम्भ में समूह में पत्तियों पर रहते हैं एवं पत्तियों की ऊपरी सतह को खाकर नुकसान पहुँचाते हैं। लार्वा बड़े

होने पर अलग– अलग पत्तियों पर जाकर उन्हें खाकर नुकसान पहुँचाते हैं। सभी कीटों के बढ़ते आँकड़ों में इस कीट का आक्रमण लगभग हर वर्ष दिखाई देता हैं। इस कीट प्रजाति का आक्रमण अप्रैल–मई के महीने में शुरू होकर अक्टूबर तक रहता हैं। इस कीट का आक्रमण पोपलर वाले क्षेत्रों में लगभग 100% पेड़ों में हो जाता हैं और अनुकूल परिस्थितियों में 60–100% तक पत्ती खाकर नष्ट कर देता हैं।

चित्र 4: अ– फुल्गुरिता के अंडे; ब दृ फुल्गुरिता का लार्वा; स– फुल्गुरिता का प्युपा; द–वयस्क मादा एवं नर कीट ।

प्रबंधन के तरीकेः इस कीट का प्रबंधन के लिए क्लोस्टेरा कुप्रिटा के प्रबंधन की विधियां अपनाई जा सकती हैं।

5–पोपलर की तितली

वैज्ञानिक नाम : *फलंता फलन्था (लेपिडोटेराः निम्फालिडे)*

परिचय

यह एक सामान्य आकार की तितली है जोकि पोपलर की पत्तियों को खाकर नुकसान पहुंचाती है। इस प्रजाति का प्रकोप, उत्तराखंड, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और जम्मू–कश्मीर के तराई क्षेत्र में देखा गया हैं। इसकी मादा तितली पौधों की कोमल पत्तियों पर एक–एक कर अंडे देती हैं। जिससे शिशु लार्वा निकलते हैं एवं पत्ती खाते हैं। प्रारंभिक अवस्था के लार्वा का सिर काले रंग का एवं शरीर हल्के पीले रंग का होता हैं। बाद में लार्वा का रंग नारंगी हो जाता हैं और शरीर काले रंग की शाखाओं वाले काँटों की अनुदैर्ध्य छः पंक्तियाँ होती हैं। पूर्ण विकसित लार्वा के प्रत्येक पार्श्व पक्ष पर मौजूद एक सफेद रंग की रेखा पायी जाती हैं। पूर्ण विकसित लार्वा लगभग 30–35 मि.मी. लंबा होता हैं। इसका प्यूपा लगभग 20–25 मि.मी. लंबा, हल्के हरे रंग का होता हैं जिस पर दो लाल एवं सुनहरे रंग की रेखाएँ होती हैं। प्यूपा तने या पौधे की शाखाओं के साथ चिपका हुए होता है जिस पर चमकदार सुनहरी संरचनाएं होती हैं। वयस्क कीट नर और मादा दोनों तितलियों का रंग लाल नारंगी होता है; लगभग 25–30 मि.मी. लंबा और लगभग 50–55 मि.मी. पंखों का फैलाव होता है। तितली के नीचे के पंख ऊपरी की तुलना में अधिक चमकदार होते हैं।

नुकसान की प्रकृतिः इस कीट का संक्रमण जुलाई से सितंबर की अवधि में होता है। इस कीट का केवल लार्वा अवस्था पौधे के लिए हानिकारक है युवा लार्वा पत्तियों को नुकसान पहुंचाते हैं। इस कीट का संक्रमण अधिक होने पर पौधे की सभी पत्तियों को नष्ट कर पेड़ों को पत्ती रहित कर देता है, जिससे पौधे की प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

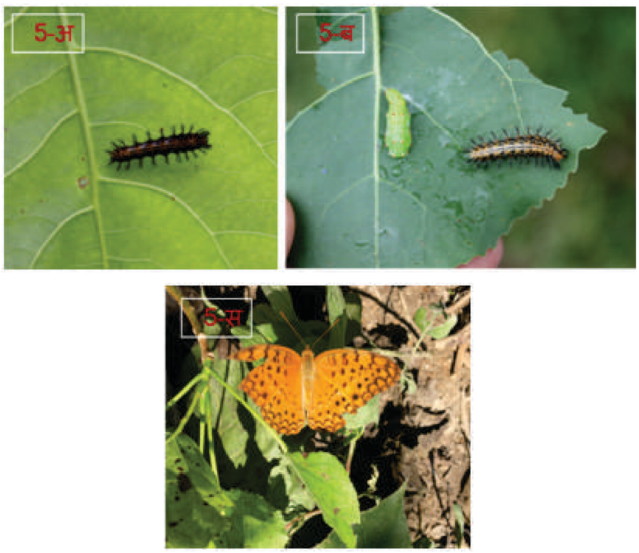

चित्र 5 : अ– फलेंथा का शिशु लार्वा; ब–फलेंथा का विकसित लार्वा एवं प्यूपा; स–वयस्क मादा कीट।

प्रबंधन के तरीके:

1. खेत को साफ रखें और पास के मैदान से वैकल्पिक पौधों को नष्ट कर देना चाहिए।

2. पत्तियों से लार्वा को चुनें और मारें।

3. जीवाणु जैव कीटनाशक बैसिलस थुरिंजिनेसिस (बायो–लिप, डिपेल या बायो–टॉक्सिक) /1–2 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से पानी के साथ उपयोग करना चाहिए।

4. पानी के साथ मैलाथियान कीटनाशक/0.05% घोल का छिड़काव करना चाहिए।

6–पोपलर की सफ़ेद भुड़ली

वैज्ञानिक नामः *यूटेरोट अंडटा (लेपिडोटेराः यूटेरोटिडी)*

परिचय

यूटेरोट अंडटा एक बहुभक्षी कीट हैं इसकी लार्वा अवस्था सफ़ेद रंग की होती हैं अतः इसे सफ़ेद भुड़ली भी कहते हैं इसकी लार्वा अवस्था पोपलर के लिए हानिकारक होती हैं। इस कीट का आक्रमण उत्तराखंड एवं उत्तरप्रदेश के कुछ हिस्सों में पोपलर की नर्सरी और वृक्षों में होता हैं। इस कीट का पतंगा रात्रिचर होता हैं एवं इसकी मादा अपने अंडे समूह में पत्तियों के नीचे अथवा शाखाओं पर देती हैं। लार्वा का सिर काले रंग का एवं शरीर क्रीम रंग का होता हैं। बाद में लार्वा के शरीर का रंग क्रीमी सफ़ेद हो जाता हैं एवं शरीर पर सभी खंडो में दो काले रंग की संरचनाएं होती हैं, शरीर सफ़ेद लंबे बालों से भरा होता है पूर्ण विकसित लार्वा लगभग 45–50 मि.मी. लंबा होता हैं। इसका प्यूपा लगभग 25–30 मि.मी. लंबा, गहरे रंग का होता हैं वयस्क कीट नर और मादा दोनों पतंगों का रंग अलग–अलग होता हैं। मादा कीट के शरीर का रंग बादामी एवं पंखों का रंग गहरा बादामी, जिस पर चाकलेटी रंग की लहरदार धारियाँ होती हैं। दोनों पंखो के बाहरी भाग की तरफ दो सीधी धारियाँ भी होती हैं। नर वयस्क का शरीर हल्का पीले रंग का होता हैं जिस पर गहरे रंग की लहरदार धारियाँ होती हैं साथ ही दोनों पंखों के बाहरी भाग की तरफ दो सीधी धारियाँ भी होती हैं। इनके पंखों का फैलाव लगभग 70–80 मि.मी. का होता है। श्रमिकाएँ कंघी नुमा होती हैं।

नुकसान की प्रकृति से यह एक बहुभक्षी कीट है जिसका आक्रमण पोपलर पर जुलाई से अक्टूबर की अवधि में होता हैं। इस कीट की केवल लार्वा अवस्था पौधे के लिए हानिकारक है इसके लार्वा झुंड में पत्तियों को सामान्यत : रात्रि में नुकसान पहुंचाते हैं एवं दिन के समय पत्तियों के निचली सतह अथवा वृक्ष से चिपके रहते हैं। इस कीट का प्रकोप अधिक होने पर यह पौधे की सभी पत्तियों को नष्ट कर पेड़ों को पत्ती रहित कर देता है, जिससे पौधे की प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

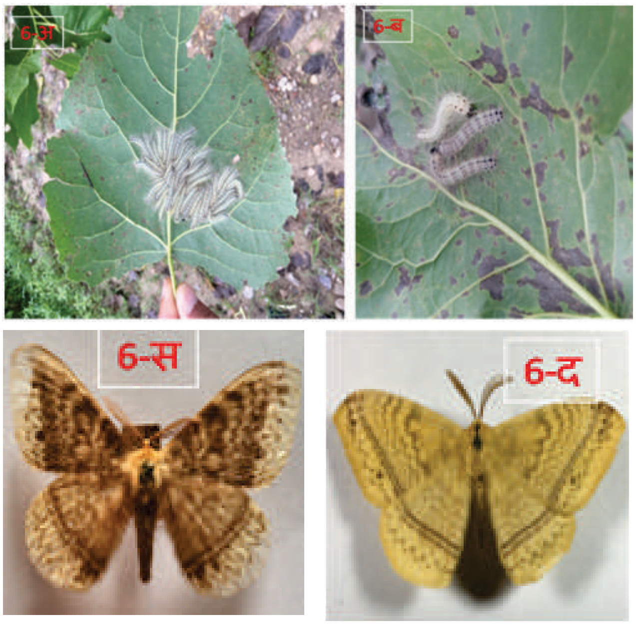

चित्र 6 : अ– यूटेरोट अंडटा के लार्वा; ब–विकसित लार्वा; स– वयस्क मादा; द– वयस्क नर कीट।

प्रबंधन के तरीके:

1. खेत को साफ रखें और पास के मैदान से वैकल्पिक पौधों को नष्ट कर देना चाहिए ।

2. पत्तियों से लार्वा को चुन कर मार देना चाहिए ।

3. जीवाणु जैव कीटनाशक बैसिलस थुरिंजिनेसिस (बायो–लिप, डिपेल या बायो–टॉक्सिक) /1–2 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से पानी के साथ उपयोग करना चाहिए ।

4. पानी के साथ मैलाथियान कीटनाशक/0.05% घोल का छिड़काव करना चाहिए।

डॉ0 अरविन्द कुमार
वैज्ञानिक–ई

कोकसीनेल्लिड बीटिलस् का नाशि कीटों के जैविक निंयत्रण में योगदान

अखिलेश कुमार मिश्रा, शोध छात्र तथा डॉ. मौ0 यूसुफ़, वैज्ञानिक–जी
वन कीट विज्ञान शाखा, वन संरक्षण प्रभाग – वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून, (उत्तराखण्ड)

कोकसीनेल्ला सेप्टेमपुंकटेटा

कोकसीनेल्ला सेप्टेमपुंकटेटा लेडी बर्ड बीटिलस (*कोलियोप्टेराः कोकसीनेल्लिडी*) की विविधता विश्वव्यापक है। इनका पर्यावरण, वन, एवं कृषि के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान हैं। वर्तमान में पूरे विश्व में इसकी 6000 से भी अधिक प्रजातियाँ पायी जाती हैं (अफरोज एण्ड शफी, 1991)। इन्हें उपवर्ग पोलीफैगा में रखा गया है। लेडी बीटिलस को महत्वपूर्ण सात अलग–अलग कुलों में विभाजित किया गया हैं, जोकि *स्टाईकोलोडिनी, काइलोकोरिनी, स्कीमिनी, कोकसीड्यूलिनी, कोकसीनेल्लिनी, एपीलेकनीनी* तथा *ओर्टेलिनी* हैं। उपकुल *एपीलेकनीनी* के सभी सदस्य पत्ती भक्षी होते हैं। कृषि क्षेत्र में विशेष रूप से मकोय कुल एवं वानिकी के कुछ वृक्षों जैसे पॉपलर की पत्तियों पर भरण–पोषण करते हैं। अन्य सभी प्रजातियाँ परभक्षी हैं। पूर्व में अधिकतर वर्गीकरण वैज्ञानिकों ने *कोकसीनेल्लिडी* को उनके भोजन ग्रहण की प्रवृत्ति के आधार पर दो भागों में विभाजित किया हैं। जो कि पत्तीभक्षी एवं परभक्षी हैं। लेडी बर्ड बीटिलस् की कुछ प्रजातियों को एक विशेष समूह हैलिजिनी में रखा गया है (ब्लेकवेल्डर, 1945)। जो कि कवकभक्षी होते हैं तथा कुछ अन्य लेडी बर्ड बीटिलस् फूलों के परागकणों तथा मकरन्द को भी खाती हैं।

सभी लेडी बर्ड बीटलस् की प्रजातियों का कृषि एवं वानिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान हैं। परभक्षी बीटिलस् छोटे एवं मुलायम कीट जैसे माहू (*होमोप्टेराः एफिडिडी*), सफेद मक्खियाँ (*होमोप्टेराः एलियोरोडिडी*), मिलीबग (*होमोप्टेराः स्यूडोकोकसीडी*), थ्रिप्स (*थाइसेनोप्टेराः थ्रिपिडी*), जैसिड्स (*होमोप्टेराः सिकाडेलिडी*), सिल्लिड (*होमोप्टेराः सिल्लिडी*) एवं अन्य छोटे हानिकारक कीटों को खाते हैं। लेडी बर्ड बीटिलस् छोटे लार्वों, कीटों के अण्डों एवं पत्तीभक्षी हानिकारक कीटों को भी खाते हैं। लेडी बीटिलस् किसानों तथा नर्सरी के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि–ये नाशि कीटों के जैविक नियंत्रण में महत्वपूर्ण परभक्षी की भूमिका निभाते हैं।

जीवन चक्र एवं पारिस्थितिकी :

लेडी बीटिलस् के जीवन चक्र में अण्डा, लार्वा, प्यूपा तथा वयस्क अवस्थाएं होती हैं। मादा बीटिल नर की अपेक्षा बड़ी होती हैं। वयस्क बीटिल विभिन्न रंगों के होते हैं। इनके सिर तथा वाह्य पंखों पर विभिन्न रंगों की चमकदार, सुन्दर आकार की पट्टियाँ तथा धब्बे पाये जाते हैं। ये धब्बे गोलाकार, आयताकार एवं टेड़े–मेड़े होते हैं तथा कभी–कभी धब्बे आपस में मिलकर सुन्दर कलाकृति का सृजन करते हैं। प्रायः वयस्क बीटिलस् गोल या अण्डाकार होते हैं।

1. **अण्डाः** लेडी बीटिलस् के अण्डे सफेद, भूरे, पीले और नारंगी–लाल, रंगों के होते हैं। इनके अण्डों का माप लगभग 1.0 से 5.0 मिलीमीटर तक होता हैं।

2. **निम्फ या लार्वाः** अण्डों से निम्फ निकलकर सर्वप्रथम अण्डों के खोखलों (शैलों) को भोजन के रूप में भक्षण करते हैं। कुछ समय पश्चात् लार्वा बड़ा होकर भोजन के रूप में छोटे नाशिकीटों तथा उनके लार्वो को खाता हैं।

3. **प्यूपाः** पूर्ण विकसित लार्वा बड़ा होकर प्यूपा में बदल जाता हैं। प्यूपा कई दिनों तक अपनी निष्क्रिय अवस्था में रहता हैं। तथा यह पेड़–पौधों की पत्तियों, छालों एवं फलों पर चिपका रहता हैं। अधिकतर प्यूपों का आकार 10 मिलीमीटर से लेकर एक सेंटीमीटर तक होता हैं। कुछ दिनों बाद प्यूपा पूर्ण विकसित होकर वयस्क बीटल के रूप में

बाहर निकल आता है।

4. **वयस्क:** लेडी बीटिलस् के वयस्क विभिन्न रंगों के होते हैं। इनका शरीर गोल या अण्डाकार होता हैं। कुछ बीटिलस् में शरीर पर सूक्ष्म सफेद रंग की बालों जैसी रचनाएं पायी जाती हैं (अय्यर, 1925)। जोकि पूरे बीटल के शरीर पर फैली होती हैं। वयस्क के मुखान्गों में दो संयुक्त आंखे, दो एन्टीना, दो मैक्सीली तथा मेंडिबलस पाये जाते हैं। लेडी बीटिलस् के शरीर पर विभिन्न रंगों की आकृतियाँ पायी जाती हैं। जोकि देखने में सुन्दर तथा आकर्षक होती हैं। इसीलिए इनको लेडी बीटिलस् जिसका अर्थ सुन्दर बीटिलस् भी कहा जाता हैं।

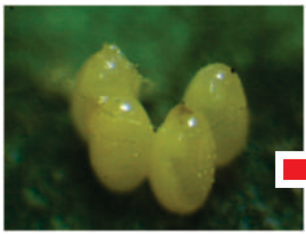

लेडी बीटिलस के अण्डे

अण्डों से निकलते हुए लेडी बीटिलस् के लार्वे

लेडी बीटिल का लार्वा अण्डों को खाते हुए

लेडी बीटिल का प्यूपा

कोकसीनेल्लिड बीटिलस् का नाशिकीटों के जैविक नियंत्रण में उपयोग:

पेड़–पौधों को कीटों एवं बीमारियों से बहुत क्षति पहुँचती हैं। भारत ही नहीं अपितु पूरे संसार में नाशि कीटों से बहुत नुकसान होता हैं। अतः हानि पहुँचाने वाले कीटों का नियंत्रण, उसकी हानि से बचाव के लिए अति आवश्यक हैं। जिससे पेड़–पौधों को होने वाली क्षति को रोका जा सके अथवा कम से कम किया जा सके। हानिकारक कीटों की रोकथाम के लिए व्यापक रूप से रासायनिक कीट नाशकों का उपयोग किया जाता हैं जो कि कृषि क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रचलित हैं। वानिकी क्षेत्र में भी नर्सरी तथा रोपणी अवस्था में कीटनाशकों के उपयोग का प्रचलन हैं। परन्तु ये कीटनाशक मृदा को प्रदूषित कर जल चक्र में सम्मिलित हो जाते हैं तथा विभिन्न मार्गों से होते हुए खाद्य श्रृंखला का हिस्सा बनकर मानव शरीर में भी प्रविष्ट कर जाते हैं। परिणामस्वरूप मानव शरीर को रोगी बना देते हैं एवं पर्यावरण को भी प्रदूषित करते हैं। इस प्रकार रासायनिक कीट–नाशकों का प्रयोग पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य दोनों के लिए हानिकारक है जिसके दुष्परिणामों को आज मानव समाज व्यापक रूप से देख रहा हैं और जो भविष्य के लिए चिन्ता का विषय बने हुए हैं। नाशि कीटों का यह जैविक नियंत्रण एक सुरक्षित विकल्प के रूप में प्रयोग किया जा सकता हैं जिससे इन रासायनिक कीटनाशकों के दुष्परिणामों से बचा जा सकता हैं।

अतः रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग सीमित करके जैविक नियंत्रण का प्रयोग किया जाना चाहिए। जैविक नियंत्रण का प्रयोग अनेक वर्षो से आवश्यकतानुसार विश्वव्यापी रूप में किया जा रहा है (बूथ एण्ड पोलाशजेक, 1996)। यह पर्यावरण सुरक्षा के साथ–साथ सस्ता, सुलभ एवं बहुआयामी हैं। अतः जैविक नियंत्रण का प्रयोग कर पेड़–पौधों, फसलों, वन संपदा, कृषि वानिकी एवं नर्सरी के पौधों को लाभ पहुँचाया जा सकता हैं।

लेडीबर्ड बीटिलस् द्वारा जैविक नियंत्रण का इतिहास एवं सफल प्रयोग :

कॉटनी कुशन स्केल कीट (*आइसीरिया पुरचेज़ी*) का जैविक नियंत्रण :

कॉटनी कुशन स्केल कीट की उत्पत्ति आस्ट्रेलिया में हुई तथा यह भारत में श्रीलंका से आयातित फलों तथा फूलों के माध्यम से आया। यह नाशिकीट पेड़ों की टहनियों, पत्तियों, झाड़ियों तथा नींबू प्रजाति के पेड़ों पर व्यापक रूप में फैल गया था। *रोडोलिया* स्पीशीज भारत में सर्वप्रथम नीलगिरी (तमिलनाडु) में सन् 1928 में बबूल (*अकेसिया डेकुरेनस*) तथा अन्य बबूल की प्रजातियों पर इसके प्रकोप की जानकारी मिलती हैं। उसके बाद यह देश के अन्य भागों जैसे. कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश आदि राज्यों में भी बहुतायत में फैल गया।

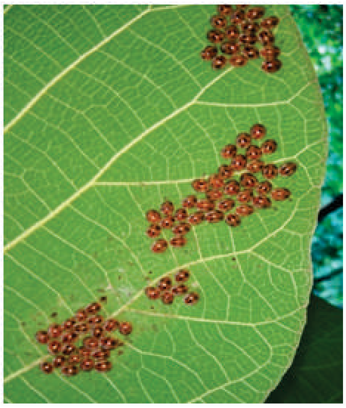

रोडोलिया स्पीशीज

इस नाशिकीट के प्रकोप का विभिन्न कृषि, बागवानी एवं वानिकी वृक्षों के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ा। इस नाशि कीट की रोकथाम के लिए, आस्ट्रेलिया में मूलतः पाये जाने वाला कोकसीनेल्लिड बीटिल *रोडोलिया कार्डिनेलिस* को भारत में संयुक्त राज्य अमेरिका से सन् 1926 में तथा दक्षिण अफ्रीका से मिस्र से होकर सन् 1930 में लाया गया था (क्रेसमैन एण्ड डूमेस्ट्री, 1931)। इस लेडी बीटल को नीलगिरी में सन् 1930 में छोड़ा गया था। बाद में न्यूजीलैण्ड से भी *रोडोलिया कार्डिनेलिस* को लाया गया तथा नाशि कीट के नियंत्रण के लिए व्यापक रूप में छोड़ा गया। परिणामस्वरूप नाशि कीट के नियंत्रण में बहुत बड़ी सफलता मिली तथा इसकी रोकथाम हो सकी। नाशिकीट का प्रकोप होने पर लगभग 10–12 बीटिलस् को संक्रमित पेड़ों पर छोड़ा जाता है। जिससे नाशि कीट तथा उनके लार्वों पर भक्षण कर यह बीटिल नाशि कीट का जैविक नियंत्रण करता है।

मिलीबग का जैविक नियंत्रण :

मिलीबग की प्रजातियाँ, भारत के कृषि, बागवानी एवं वानिकी के पौधों, झाड़ियों तथा वृक्षों पर व्यापक रूप से पायी जाती हैं। जो इन पर अपना वास करती हैं तथा पेड़–पौधों को भारी क्षति पहुँचाती हैं। नाशि कीट (मिलीबग) का शरीर मुलायम सफेद रंग का रूई जैसा तथा कभी–कभी नारंगी–लाल रंग का होता हैं। इनका शरीर गोलाकार तथा अण्डाकार होता हैं। ये पत्तियों की निचली सतह, डंठल एवं पेड़ों की छालों पर बहुतायत में मिलते हैं।

मिलीबग के प्रकोप से पेड़–पौधों की वृद्धि एवं विकास की दर कम हो जाती हैं। जिससे फसलों, फूलों, फलों, कृषि वानिकी तथा बागवानी के वृक्षों को भारी क्षति पहुँचती हैं। मिलीबग को रासायनिक विधि से नियंत्रण करने के लिए कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। क्योंकि ये पेड़ों की छाल तथा टहनियों के भीतर छुपे रहते हैं। अतः रासायनिक कीट नाशकों के घोल वहाँ नहीं पहुँच पाते हैं। वयस्क मिलीबग मादा अपने अण्डों के साथ रहती है।

कोकसीनेल्ला सेप्टेमपुंकटेटा **मिलीबग का भक्षण करते हुए**

प्रत्यक्ष रूप से भी वयस्क मिलीबग पर कीट नाशक रसायनों के छिड़काव का बहुत कम प्रभाव पड़ता है क्योंकि इनका शरीर मोमीय पदार्थ से घिरा होता हैं। विश्व में अनेक उदाहरणों से स्पष्ट हैं कि जैविक नियंत्रण से ही मिलीबग को नियंत्रित किया जा सकता है। मिलीबग की कुछ प्रजातियाँ जैसे–अंगूर के मिलीबग, आम के मिलीबग और अनानास के मिलीबग फलों के आकार को कम एवं स्वाद को खराब कर देते हैं। मिलीबग पेड़–पौधों की पत्तियों, डंठलों एवं फलों तथा फूलों के आस–पास ही जमा रहते हैं। इनके सभी वयस्क तथा अवयस्क पौधों से रस चूसते हैं तथा एक चिपचिपा पदार्थ भी स्रावित करते हैं जिससे हानिकारक कवकों को उगनें का उपयुक्त माध्यम मिलता है। मिलीबग के अण्डे भी मोमीय पदार्थ से घिरे होते हैं। कुछ मिलीबग कीट नाशी रासायनों के प्रति रोधक क्षमता भी विकसित कर लेते हैं (अग्रवाला एण्ड घोष, 1988)।

मिलीबग के जैविक नियन्त्रण के लिए *क्रिप्टोलेमस मोंटेरोजेरी* को सन् 1898 में नीलगिरी (तमिलनाडु) में छोड़ा गया था। इसके पश्चात् पूरे देश में मिलीबग की रोकथाम के लिए व्यवसायिक रूप में *क्रिप्टोलेमस मोंटेरोजेरी* का प्रयोग होने लगा। सन् 1977 में केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र चेट्टल्ली, कोडागू (कर्नाटक) में *क्रिप्टोलेमस मोंटेरोजेरी* के संर्वधन को विकसित किया गया। सन् 1977 से 1983 तक क्षेत्रीय तौर पर अनेक प्रायौगिक कार्य किये गये। कोकसीनेल्लिड बीटलस् का संर्वधन विभिन्न मुलायम शरीर के कीटों तथा *कोरसेरा सिफैलोनिका* के अण्डों को भोजन के रूप में प्रयोग करके किया जाता हैं। कोकसीनेल्लिड बीटिलस् के लार्वें इनको खाकर प्यूपा से बदलकर अन्त में वयस्क अवस्था में आ जाते हैं।

बीटिलस् का प्रयोग बागवानी तथा कृषि के क्षेत्र में बहुतायत से नाशि कीटों के जैविक नियंत्रण के लिए किया जाता हैं। बागवानी के क्षेत्र में नींबू, अमरूद, अंगूर, आम, सेब, बेर तथा कॉफी एवं चाय के बागानों में भी जैविक नियंत्रक के रूप में इन बीटिलस् को प्रयोग में लाया गया है। वानिकी के क्षेत्र में भी इनका प्रयोग जैविक नियंत्रक के रूप में किया जा सकता है।

मीनोकाइलुस सैक्समेकुलेटुस **माहू का भक्षण करते हुए**

माहू (एफिड्स)

का जैविक नियंत्रण :

माहू (एफिड्स) को सामान्य भाषा में पौधा जूँ, पौधा खटमल या हरी मक्खी भी कहते हैं। माहू की कई प्रजातियाँ पूरे भारतवर्ष में पायी जाती हैं।

माहू की कुछ प्रजातियों का प्रकोप अत्यधिक हो जाने से पेड़–पौधों को भारी क्षति पहुँचती हैं (इवैक्स, 2000)। माहू की कुछ प्रजातियाँ विदेशों से भारत में आ जाने से भी गंभीर समस्याएं उत्पन्न हुई। जैसे *ऐरीसोमा लेनीजेरम* जोकि पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका का नाशि माहू कीट हैं। भारत में यह इंग्लैण्ड से सर्वप्रथम शिमला, (हिमाचल प्रदेश) में नर्सरी पौधों के साथ आ गया था। तदोपरान्त यह पूरे प्रदेश में तथा अन्य क्षेत्रों में भी सेब के बगीचों में फैल गया। माहू पेड़ों एवं पौधों की नई शाखाओं, फूलों एवं फलों पर बहुतायत में आक्रमण करता हैं। छोटे पौधों की छाल में तथा डंठलों पर भी भारी संख्या में देखा जा सकता है तथा पौधों के विभिन्न भागों से रस चूसकर उन्हें भारी क्षति पहुँचाता हैं।

माहू की कुछ प्रजातियाँ पेड़–पौधों की जड़ों में चली जाती हैं तथा प्रत्यक्ष रूप से नुकसान पहुँचाती हैं। माहू की अनेक प्रजातियाँ पेड़ों के ऊपरी भागों पर रहकर छाल एवं जड़ों से रस चूसती हैं। नाशि कीट माहू, फलों एवं फूलों को भारी क्षति पहुँचाता हैं। माहू प्रायः वानिकी, कृषि, बागवानी, फूलों एवं नर्सरी के छोटे पौधों पर आक्रमण कर पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए घातक सिद्ध होता है। लेडी बीटिलस् की अनेक प्रजातियाँ, नाशि कीट माहू को बड़े चाव से खाती हैं।

लेडी बीटिल का लार्वा माहू का भक्षण करते हुए

***प्रोपाइलिया डिसेक्टा* माहू का भक्षण करते हुए**

एक लेडी बीटल लगभग अपने शरीर के वजन के बराबर प्रति दिन नाशि कीटों का भक्षण करती है। *कोकसीनेल्ला सेप्टेमपुंकटेटा, मीनोकाईलस सैक्समैकुलेट्स* एवं *हिप्पोडेमिया वैरीगेटा* आदि कई प्रजातियाँ माहू के नियंत्रण के लिए प्रयोग में लायी गयी हैं (बोस एण्ड रे, 1967)। लेडी बीटिलस् की कई प्रजातियाँ जैविक नियंत्रण के रूप में व्यवसायिक तौर पर भी प्रयोग में लाई जा रही हैं।

सिल्लिड का जैविक नियंत्रण :

सू–बबूल को सामाजिक वानिकी के क्षेत्र में बढ़ावा देने के लिए भारत में लाया गया था तथा व्यापक रूप में सड़कों के किनारे एवं खाली बंजर भूमि पर बहुतायत मात्रा में रोपित किया गया था। परन्तु कुछ समय बाद यह पेड़ नाशि–कीट, सिल्लिड द्वारा ग्रसित हो गया। *ल्यूसीना सिल्लिड* एवं *हैटीरोसिल्ला क्यूबाना* नाशि सिल्लिड कीट, दक्षिणी अमेरिका से विभिन्न मार्गो तथा माध्यमों से भारत में आ गया।

इस नाशि कीट का प्रकोप दक्षिण भारत के कई राज्यों, विशेषकर कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु तथा आन्ध्रप्रदेश एवं उत्तर भारत के भी अनेक राज्यों, जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार एवं हरियाणा आदि में काफी विस्फोटक स्थिति में फैल गया था। वयस्क और निम्फ सिल्लिडस् के प्रकोप से वृक्षों की पत्तियाँ सूखकर गिर जाती हैं। जिसकें कारण वृक्षों की वृद्धि में अवरोध हो जाता है। कोकसीनेल्लिड बीटिलस् जैसे *क्यूरिनस कोरिलियस* जो एक दक्षिण अमेरिका में मूलतः पाया जाने वाला परभक्षी बीटिल है। इस बीटिल को थाईलैण्ड से सन् 1988 में भारत लाया गया। सन् 1988 में इसे भारत में व्यापक तौर पर बड़ी संख्या मे छोड़ा गया था तथा यह *हैटीरोसिल्ला क्यूबाना* के जैविक नियंत्रण में सफल रहा हैं। परिणामस्वरूप लगभग दो वर्षों बाद नाशि कीट सिल्लिड की संख्या में काफी कमी हो गयी। तत्पश्चात् *क्यूरिनस कोरिलियस* को देश के कई अन्य राज्यों में भी छोड़ा गया। वानिकी के क्षेत्र में *क्यूरिनस कोरिलियस* द्वारा जैविक नियंत्रण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

हानिकारक कवकों का जैविक नियंत्रण :

शीशम, पॉपलर, बागवानी तथा कृषि–वानिकी के अनेकों वृक्षों पर कवकों का भी भयावह प्रकोप होता है। जिससे पौधों की पत्तियाँ कवकों द्वारा ग्रसित होने के कारण पीली होकर गिर जाती हैं। फलस्वरूप पौधों की वार्षिक वृद्धि दर में कमी आ जाती है। लेडी बीटिलस् की अनेक प्रजातियाँ कवक भक्षी होती हैं। जो कवकों को खाकर अपना जीवन निर्वाह करती हैं। लेडी बीटिलस् जैसे *आइलिस सिंक्टा, आइलिस कनफ्यूजा, आइलिस इंडिका* एवं *साइलोबोरा बाइसोक्टोनोटेटा* आदि कवक भक्षी बीटिलस् के लार्वे एवं वयस्क हानिकारक कवकों को बड़े चाव से खाते हैं। इनका मुख्य भोजन मिलडीव कवक हैं।

साइलोबोरा बाइसोक्टोनोटेटा **का लार्वा शीशम की पत्ती पर कवक का भक्षण करते हुए**

साइलोबोरा बाइसोक्टोनोटेटा **का वयस्क शीशम की पत्ती पर कवक का भक्षण करते हुए**

वर्तमान समय में कोकसीनेल्लिड बीटिलस् की स्थितिः

बढ़ते प्रदूषण, तापमान में वृद्धि तथा अधिकाधिक कीटनाशकों के प्रयोग के कारण कोकसीनेल्लिड बीटिलस् की संख्या दिनों–दिन घटती जा रही हैं। कोकसीनेल्लिड बीटिलस् की खूबसूरत दुनिया का इस तरह से सिकुड़ते जाना, सिर्फ प्रकृति में सौन्दर्य वर्धक बीटिलस् की कमी ही नहीं, अपितु मानव समाज के लिए भी खतरे का संकेत हैं। ये कीट सिर्फ जैव विविधता का हिस्सा ही नहीं, बल्कि नाशि कीटों के जैविक नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः वातावरण में सतुंलन के लिए प्रकृति में कोकसीनेल्लिड बीटिलस को बनाये रखना मानव समाज के लिए बहुत लाभकारी हैं। ये अपने भोजन के लिए एक फूल से दूसरे फूलों, फलों, पत्तियों, टहनियों, छोटे पौधों एवं बड़े पौधों पर दिन भर दौड़ते रहते हैं। कोकसीनेल्लिड बीटिलस् के पर्यावरण में बने रहने से ही विभिन्न नाशि कीटों की रोकथाम बहुत हद तक संभव हैं। फूलों पर कोकसीनेल्लिड बीटिलस् परागण की क्रिया में भी सहायता करतें हैं। हमारे बगीचों, खेतों, वनों तथा खेल–कूद के मैदानों पर लेडी बीटिलस् को देखकर बच्चे खुश होते हैं और इनके साथ खेलते हैं। नाशिकीटों पर परभक्षी होने के साथ–साथ कोकसीनेल्लिड की कुछ प्रजातियाँ पत्तीभक्षी भी होती हैं (कपूर,1954)। जो कि पेड़–पौधों के लिए नुकसानदायक हैं।

ऐनेगिलिज कार्डोनी

लेडीबीटिल माहू को खाते हुए

मुख्य रूप से परभक्षी होने के कारण इस कुल के सदस्यों का योगदान जैविक नियंत्रण में भी सराहनीय एवं महत्वपूर्ण है। पुष्पों में विभिन्न प्रकार के छोटे–छोटे कीट जो पुष्पों को हानि पहुँचाते हैं। इन हानिकारक कीटों को भी लेडी बीटिलस् बड़े चाव से खाते हैं एवं पुष्पों की वृद्धि, विकास तथा सुन्दरता को बनाये रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

वातावरण में घास, पौधे, झाड़ियां तथा वृक्षों के साथ–साथ परपोषी एवं सहभोजी जीव–जन्तु भी हैं। खाद्य श्रृंखला में जीव–जन्तु, पत्ती–भक्षी, फल–फूल भक्षी होने के साथ–साथ परभक्षी के रूप में हानिकारक जीव–जन्तुओं को भी खाते हैं तथा कीट परभक्षी, नाशि कीटों को खाकर जीवन निर्वाह करते हैं। संसार में सभी जीवों का अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर है। यदि इनमें से कोई एक कड़ी भी कमजोर हो जाये या टूट जाये तो सभी खाद्य श्रृंखला के अन्य जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। प्रकृति ने लेडी बीटिलस् को नाशि कीटों के नियंत्रण के लिए हमें वरदान के रूप में दिया है। कोकसीनेल्लिड बीटिलस्, नाशि कीटों तथा कवकों का भक्षण करके हमारे पेड़–पौधों की रक्षा करते हैं।

माहू, सफेद मक्खियाँ, जेसिडस्, मिलीबग आदि नाशि कीट प्रत्यक्ष रूप से पौधों को नुकसान पहुँचाते हैं तथा दूसरी अन्य बीमारियों के वाहकों एवं द्वितीयक संक्रमण को बढ़ावा देते हैं (कपूर, 1970)। लेडी बीटिलस द्वारा नाशि कीटों के भक्षण से पेड़–पौधों को होने वाली क्षति जैविक नियंत्रण विधि से रोकी जा सकती है जिससे कि पेड़ों का विकास सुचारू रूप से हो सके। तथा पेड़–पौधे विकसित होकर फूलों, फलों एवं वन संपदा की समृद्धि हो सके। पेड़–पौधों में, लेडी बीटिलस् द्वारा नाशि कीटों से सुरक्षा प्रारम्भिक काल से लेकर जीवन पर्यन्त चलती रहती है।

प्रकृति ने लेडी बीटिलस् को नाशि कीटों एवं हानिकारक कवकों को भक्षण करने का वरदान दिया है। परन्तु प्रकृति के इन सुन्दरतम कीटों का जीवन आज के प्रदूषित वातावरण के कारण खतरे में है। वनाग्नि, तापमान में वृद्धि, पर्यावरण परिवर्तन, पेड़ों की अन्धाधुन्ध कटाई, नगरीकरण एवं कीट नाशक रासायनों, खरपतवार नाशी रासायनों आदि के अन्धाधुन्ध प्रयोग से खतरे के कारण बने हुए है। कृषि क्षेत्र में अत्यधिक रासायनों के प्रयोग से न केवल नाशि कीटों की, बल्कि लाभकारी परभक्षी कीटों की भी मृत्यु हो जाती है। जिससे दुर्लभ प्रजातियों के लाभदायक कीटों का जीवन भी संकट में आ जाता है। पूरे संसार में लेडी बीटिलस् की व्यापकता हैं। परन्तु वर्तमान समय में भारत में कुल 400 प्रजातियों का उल्लेख ही मिलता हैं (पूर्णी, 2001)।

उत्तर भारत एवं पश्चिम भारत के कई प्रदेशों में रासायनों के अत्यधिक प्रयोग से कोकसीनेल्लिड बीटिलस् की संख्या बहुत कम होती जा रही हैं। यदि हमें प्रकृति के इन सुन्दरतम जीवों को बचाना हैं तो अधिक से अधिक पेड़–पौधों को लगायें। प्रकृति में इन लाभदायक कीटों का संरक्षण तथा संख्या वृद्धि के लिए हमें आवश्यक पहल करने की आवश्यकता हैं। यदि ये परभक्षी कीट हमारे खेतों, बागानों तथा वनों में प्रचुर मात्रा में होगे तो स्वाभाविक रूप से नाशि कीटों का भक्षण कर प्रकृति में संतुलन बनाये रखने में सहायक सिद्ध होगें। तथा वातावरण रासायनिक कीट–नाशकों के प्रदूषण से मुक्त तथा स्वास्थ्य वर्धक होगा। नदियों में बहता पानी स्वच्छ और निर्मल होगा।

सन्दर्भ

अफरोज, एस.एण्ड शफी, एस.ए. (1991). स्पर्मेथिका इन सम इण्डियन स्पीशीज ऑफ कोकसीनेल्लिडी (कोलियोप्टेरा). इण्डियन जर्नल ऑफ सिस्टेमेटिक एन्टोमॉलोजी. 8(2): 49–52.

अग्रवाला, बी.के. एण्ड घोष, ए. के. (1988). प्रे रिकार्डस ऑफ एफिडोफैगस कोकसीनेल्लिडी इन इण्डिया. ए रिव्यू एण्ड बिबलियोग्राफी. ट्रोपिकल पेस्ट मैनजमेंट. 34(1):1–14.

अय्यर, टी. वी. आर. (1925). अनडिस्क्राइब्ड कोकसीनेल्लिडी बीटलस् ऑफ इकोनोमिक इर्म्पोटेन्स *स्कीमनस कोकसिवोरा* अय्यर. जर्नल ऑफ द बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी. 30: 491–499.

ब्लेकवेल्डर, आर. (1945). चेकलिस्ट ऑफ द कोलियोप्टेरस इनसेक्ट्स ऑफ मैक्सिको, सेन्ट्रल अमेरिका, द वेस्टइण्डीज एण्ड साउथ अमेरिका.पार्ट–III- यू. एस. नेट. म्यू. बूल. 183: 343–550.

बूथ, आर. जी. एण्ड पोलाशजेक, ए.(1996). द आइडेन्टीटीज ऑफ लेडी बर्ड बीटिल प्रीडेटर्स यूज्ड् फॉर व्हाईट फ्लाई कन्ट्रोल, विद् नोट ऑन सम व्हाईट फ्लाई पैरासिटोइड्स, इन यूरोप. ब्रिगटोन क्रॉप प्रोटेक्शन कान्फ्रेन्स–पेस्ट एण्ड डिसीजेज. 69–74पीपी.

बोस, के. सी. एण्ड रे, एस. के. (1967). ए कम्परेटिव स्टडी ऑन द कन्जंपशन ऑफ एफिड्स बाई द कॉमन प्रिडेटर, *काइलोमीनीज सैक्समैकुलेटा (कोलियोप्टेरा: कोकसीनेल्लिडी)*. इण्डियन जे. साइन्स एण्ड इण्ड. 1(1): 56– 59.

क्रेसमैन, ए. डब्ल्यू. एण्ड डूमेस्ट्री, जे. ओ. (1931). द फीडिंग रेट ऑफ आस्ट्रेलियन लेडी बीटिल, *रोडोलिया कार्डिनेलिस*. जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च. 41(3): 197–203.

इवैक्स, ई. डब्ल्यू. (2000). मार्फोलोजी ऑफ इनवेजन: बॉडी साइज पैटर्न्स एसोसिएटेड विद् इस्टेबलिशमेन्ट ऑफ *कोकसिनेल्ला सेप्टेम्पुक्टेटा (कोलियोप्टेरा: कोकसीनेल्लिडी)* इन वेर्स्टन नार्थ अमेरिका. यूरोपियन जर्नल ऑफ एन्टोमोलोजी. 97: 469–474.

कपूर, ए.पी. (1954). ए न्यू स्पीशीज ऑफ कोकसीनेल्लिडी (*कोलियोप्टेरा*) पिरीडेसियस ऑन द साइट्रस वाइट फ्लाई इन इण्डिया. रिकार्डस ऑफ इण्डियन म्यूजियम. 52: 189–. 193.

कपूर, ए.पी. (1970). फाइलोजेनी ऑफ लेडी बीटिलस्. प्रोसीडिंगस ऑफ 57 इण्डियन साइंस कॉंग्रेस. पार्ट II: 167–180.

पूर्णी, जे. (2001). ए रिव्यू ऑफ द जीनस *स्यूडास्पाईडलमेरस कपूर कोकसीनेल्लिडी (कोलियोप्टेरा: कोकसीनेल्लिडी)* फ्रॉम द इण्डियन सबरिजन विद् डिस्क्रीप्शन ऑफ ए न्यू स्पीशीज. ऑरिएन्टल इन्सेक्टस. 35:299–310.

अखिलेश कुमार मिश्रा
शोध छात्र

भारत में कृषि वानिकी की भूमिका

वेदपाल सिंह, वैज्ञानिक–सी, – वन संवर्धन एवं प्रबन्धन प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

कृषि वानिकी भूमि उपयोग पद्धति की वह विधि हैं जिसमें कृषि फसलें वृक्षों के साथ–साथ इस प्रकार उगाई जाती हैं जिससे कि भूमि का सद्उपयोग इस प्रकार किया जाता हैं कि खराब भूमि को भी काम में लाया जा सके। दूसरे शब्दों में कृषि वानिकी भूमि प्रबन्धन की वह प्रक्रिया हैं जिसमें वृक्षों, कृषि फसलों और पशु पालन को एक ही परिवेश में किया जाता हैं। इस प्रक्रिया में कृषि क्रियाओं पर कम खर्च करके अधिक उत्पादन किया जा सकता हैं। कृषि वानिकी भारतीय कृषि में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। कृषि वानिकी पद्धति नयी नहीं हैं, बल्कि भारत में यह एक पुरानी प्रक्रिया हैं। इसकी लोकप्रियता खेती की तकनीक में क्रमबद्ध तरीके से उन्नति, राष्ट्रीय कृषि आयोग की 1976 में संस्तुति के बाद ज्यादा बढ़ी हैं और इसके बाद बहुत से राष्ट्रीय व बहुराष्ट्रीय सहायता कार्यक्रम कृषि वानिकी को प्रोत्साहन देने के लिये शुरू किये गये। इसी समय में कृषि वानिकी में शोध के लिये भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् एवं भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् में वर्ष 1980 के दशक से शोध परियोजनाएँ प्रारम्भ की गयीं और इन संस्थाओं ने कृषि वानिकी के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। किसानों व अन्य सम्बन्धित संस्थाओं को प्रोत्साहित किया गया। कृषि वानिकी के लिये कुछ वृक्ष प्रजातियों का चयन कर उनको कृषि वानिकी के लिये संस्तुतित किया गया। इन प्रजातियों के नाम कुछ इस प्रकार है : पॉपलर, ड्रेक, शीशम, देशी बबूल, सुबबूल व यूकेलिप्टस। हाल के वर्षो में कृषि वानिकी किसानों के लिये वरदान साबित हुई है, क्योंकि कृषि वानिकी अपनाने से खेतों से अधिक उत्पादन, अधिक आय व कृषि से जोखिम भी अपेक्षाकृत कम हुआ। एक आँकड़े के अनुसार एशिया में 25 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण कृषि वानिकी उत्पाद प्रयोग में लाते हैं। कृषि वानिकी में वृक्ष महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, वृक्षों के कृषि में समावेश होने वाले विविधीकरण से पोषक तत्व व उर्जा सुरक्षा में योगदान मिलता हैं। कृषि वानिकी ग्रामीण एवं शहरी आबादी को उत्पादन, औद्योगिक उपयोग व मूल्य वृद्धि से रोजगार प्रदान करती हैं। एक अनुमान के अनुसार लगभग 65 प्रतिशत इमारती लकड़ी की आवश्यकता खेतों पर उगने वाले वृक्षों से होती हैं। राष्ट्रीय वन नीति 1988 के अनुसार शायद कृषि वानिकी एक मात्र आधार हैं, जो वन आच्छादन क्षेत्र को 22 प्रतिशत से 35 प्रतिशत तक बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता हैं।

कृषि वानिकी पद्धति दोनों (पारम्परिक व आधुनिक) भूमि उपयोग सिंचित व असिंचित दशाओं में खाद्यान्न, ईंधन, चारा, इमारती लकड़ी, रेशे, बहुमूल्य तत्व, पारिस्थितिकी सुरक्षा, सतत जीवन यापन, गरीबी उन्मूलन व फसल उत्पादन में सहयोग करती हैं। कृषि वानिकी से जैविक तत्व, कार्बन भण्डारण, वानिकी को बढ़ावा, जैव विविधता संरक्षण और मृदा एवं जल संरक्षण को बढ़ावा मिलता हैं।

भारत में कृषि वानिकी की आवश्यकता : मुख्य नीतिओं की शुरूआत, राष्ट्रीय वन नीति 1988, राष्ट्रीय कृषि नीति 2000, योजना आयोग की टास्क फोर्स सहित भारत 2001, राष्ट्रीय बाँस मिशन 2002, राष्ट्रीय किसान नीति 2007 और हरित भारत मिशन 2010 में कृषि वानिकी की भूमिका पर इन नीतियों में जोर दिया गया हैं। कृषि वानिकी में तत्व चक्र को बढ़ाने, कार्बनिक पदार्थ, सतत् कृषि विकास व वन आच्छादन सुधारने की दक्षता हैं। यद्यपि कृषि वानिकी कुछ कारणों वश, विकास की उम्मीद के मुताबिक लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पायी है इच्छित परिणाम न मिलने के कारणों में, मुख्य रूप से कुछ वृक्षों की कटाई व परिवहन पर वैधानिक रोक का प्रावधान जो कि किसान अपने खेतों पर उगाते हैं। संस्थागत सहारे की कमी, अच्छे पादप पदार्थ की कमी, कृषि वानिकी मॉडल की विस्तृत शोध, विपणन की असंस्थागत ढांचा तथा कटान के बाद प्रसाधनों की कमी प्रमुख हैं। छोटे किसानों को जिनके पास छोटी जोत/कम भूमि हैं उनको एकल कृषि फसल प्रणाली के बजाय कृषि वानिकी को समझाने की आवश्यकता है। इस दिशा में कृषि वानिकी प्रणाली को विकसित करने, जिसमें कि वृक्षों, फसलों, पशुपालन और दूसरी जीवन यापन प्रक्रियाओं को शुरू करने की आवश्यकता है। इस समन्वित स्वरूप को राष्ट्रीय कृषि वानिकी को प्रारम्भ करने की आवश्यकता है। वृक्षों को जीवित रखने की एक बड़ी चुनौती स्थापित फेज या शुरूआत में एक कठिन कार्य है। जिसके बिना यह सम्भव नहीं है। राज्य सरकारों को कृषि वानिकी उत्पादों की कटाई

एवं परिवहन पर से प्रतिबंध जो कि वनों के आस पास लगाई जाती हैं, हटायें जाने की आवश्यकता है। जो किसान वृक्ष प्रजातियां अपने फार्मों में उगाते हैं उनको कटान करने की अनुमति दी जानी चाहिए व राजस्व विभाग को भी ऐसे कृषकों पर कोई कर वसूलना नहीं चाहिए।

कृषि वानिकी के लाभ : पिछले तीन–चार दशकों से कृषि वानिकी के तुलनात्मक अध्ययन किये गये हैं। इन अध्ययनों से इस बात पर जोर दिया गया है कि कृषि वानिकी आर्थिक एवं पर्यावरण की दृष्टि से अधिक लाभ दायक हैं बजाय एकल पद्धति कृषि या वानिकी अपनाने के तथा सतत् विकास के लिये भी कृषि वानिकी अधिक लाभदायक है। कृषि वानिकी पद्धति देश के कई भागों में अपनायी जा चुकी हैं, कृषि वानिकी पद्धति में निम्न लाभों को सम्मिलित किया जा सकता हैं :–

1. कृषि वानिकी जल बहाव व मृदा कटाव को नियंत्रित कर, जल, मृदा तत्वों, कार्बनिक पदार्थो की हानि को कम करती है।

2. यह भूमि का कार्बनिक पदार्थों एवं जैविक प्रक्रियाओं को बनाये रखती है जिससे भूमि की उत्पादकता का स्तर संतोषप्रद रहता है। यह उचित अनुपात में वृक्षों को रखने से, सामान्यतः कम से कम 20 प्रतिशत आच्छादित वृक्षों का क्राऊन कार्बनिक पदार्थो को बनायें रखता है।

3. यह भूमि के भौतिक गुणों को बनाये रखने में सहायता करता है क्योंकि वृक्षों की जड़ें कार्बनिक पदार्थों को बनायें रखती हैं।

4. यह कृषि की अपेक्षा भू–तत्व चक्र को अधिक सक्रिय रखती है इससे तत्वों का अधिक प्रभावी उपयोग मृदा में होता हैं।

5. इससे भूमि के हानिकारक गुणों, लवणीय एवं क्षारीय दोनों प्रकार के दोषों की रोकथाम है और दूषित भूमि का सुधार भी होता है।

6. यह कीड़े–मकौड़े व बीमारियों को कम करती हैं।

7. कृषि वानिकी मृदा जल उपलब्धता को भूमि उपयोग पद्धति में बढ़ावा देती हैं, यद्यपि शुष्क क्षेत्र में वृक्षों और फसलों की जल प्रतिस्पर्धा एक समस्या है।

8. कृषि वानिकी में नाइट्रोजन स्थिर करने वाले वृक्षों व झाड़ियों से भूमि उत्पादकता भी बढ़ती है।

9. वृक्षों के अवशेष व कटाई–छटाई से तुलनात्मक मृदा उत्पादकता बढ़ती हैं। इसके अतिरिक्त वृक्षों की अच्छी कटाई–छटाई से फसलों का उत्पादन बढ़ाने में भी सहायता मिलती है।

10. कृषि वानिकी अधिक विविध आय उपलब्ध कराती है और फार्म से होने वाले जोखिम को भी कम करती हैं।

11. ये एकल पद्धति की तुलना में सौर ऊर्जा का अधिक प्रभावी प्रयोग करती है क्योंकि इसमें विभिन्न ऊँचाई की वृक्ष प्रजातियाँ, पत्ती का आकार और लम्बाई इत्यादि का योगदान रहता है।

12. खराब व डी श्रेणी की मृदा का सुधार कर रोजगार के अवसर बढ़ाये जा सकते हैं।

13. वृक्षों के अवशेष के सड़ने से भूमि को पोषक तत्व मिलते हैं साथ ही वृक्ष भूमि के निचली सतह से पोषक तत्व लेकर कृषि वानिकी के उत्पादन में सहायता करते हैं।

14. भूमि की उत्पादकता बनाये रखने में कृषि वानिकी में जड़ों की उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं जितनी कि भूमि से ऊपर बायोमास की।

15. गर्मी के दिनों में वृक्षों से पालतू जानवरों को आश्रय मिलता हैं तथा पशुओं को चारा भी उपलब्ध होता हैं।

16. भूमि का जल स्तर बढ़ने से भूमि लवणीय बन जाती है, वृक्ष जल को वाष्पोत्सर्जन के द्वारा वातावरण में उड़ाकर भूजल को नीचे सतह पर ले जाने का कार्य करते हैं।

इस प्रकार कृषि वानिकी भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अदा करती हैं।

वेदपाल सिंह
वैज्ञानिक–सी

जनवरी–जून, 2019 के अंतर्गत संस्थान में आयोजित प्रमुख कार्यक्रम

अंतर्राष्ट्रीय वन दिवस – 2019

अंतर्राष्ट्रीय वन दिवस के अवसर पर आयोजित प्रदर्शनी मेला का उद्घाटन करते हुये माननीय श्री सी.के. मिश्रा, सचिव, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार एवं उपस्थित डॉ. एस.सी. गैरोला, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. ,प्रख्यात पर्यावरणविद पद्मभूषण श्री चंडी प्रसाद भट्ट, ए.एस. रावत, निदेशक, व.अ.सं. आदि विशिष्ट अतिथिगण।

अंतर्राष्ट्रीय वन दिवस के उपलक्ष्य पर आयोजित सभा में उपस्थित माननीय अतिथिगण।

पृथ्वी दिवस (22 अप्रैल, 2019)

संस्थान में दिनांक 22 अप्रैल, 2019 को संस्थान के सभागार में पृथ्वी दिवस –2019 मनाया गया। इस उपलक्ष्य में इमर्जिंग ट्रेंड्स इन प्रोटेक्टिंग ए स्पीसीज शीर्षक विषय पर जैव विविधता विशेषज्ञ और डॉल्फिन इंस्टीट्यूट ऑफ बायो–मेडिकल एंड नेचुरल साइंसेज, देहरादून में प्रोफेसर के रूप में कार्यरत माननीय डॉ. सास विश्वास, वैज्ञानिक (सेवानिवृत्त) ने व्याख्यान दिया।

डॉ. सास विश्वास, वैज्ञानिक (सेवानिवृत्त), डॉल्फिन इंस्टीट्यूट ऑफ बायो–मेडिकल एंड नेचुरल साइंसेज, देहरादून व्याख्यान देते हुये

ए.एस. रावत, निदेशक, व.अ.सं. मुख्य वक्ता को स्मृतिचिह्न भेंट करते हुये

अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस

विस्तार प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून द्वारा दिनांक 22 मई 2019 को अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस के अवसर पर प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर श्री ए.एस. रावत, निदेशक, वन अनुसंधान संस्थान ने प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। इस मौके पर विभिन्न स्कूलों के अध्यापक, छात्र छात्राओं तथा संस्थान के अन्य अधिकारियों, कर्मचारियों ने भाग लेकर प्रदर्शनी का अवलोकन किया।

अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस पर आयोजित प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुये माननीय ए. एस. रावत, निदेशक, व.अ.सं. एवं उपस्थित अधिकारी व कर्मचारीगण

दिनांक 25 मई से 5 जून तक आयोजित विश्व पर्यावरण दिवस– 2019 की कुछ झलकियाँ

25 मई को आयोजित चित्रांकन प्रतियोगिता

वाद–विवाद प्रतियोगिता में उपस्थित प्रतिभागी एवं अधिकारीगण

2 जून को परिसर में आयोजित स्वच्छता अभियान के कुछ दृश्य

पर्यावरण की सुरक्षा के लिए दौड़: 5 जून

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद के सभागार में दिनांक 12 जून को आयोजित पुरस्कार वितरण समारोह